THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180293
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/Z11I Accession No. G.H.815

Author आ॰ विष्णु किशोर।

Title ईरान की कहानी। 1953

This book should be returned on or before the date last marked below.

(सर्वाधिकार लेखक के अधीन सुरक्षित)

ecked 1963

प्रथम संस्करण—

दिसम्बर १९५३

आवरण चित्रकार—मोतीलाल वर्मा

प्राप्ति स्थान—

(१) भगवान पुस्तकालय, भागलपुर—२

(२) 'पथिक', ग्राम-पो० पचौत जि० मुँगेर

(३) श्यामल किशोर झा, ग्राम-लगमा, पो०-सोनबरसाराज
जि० सहरसा

मूल्य—१=)

Checked 1969

मुद्रक—

आनन्द प्रेस,

भागलपुर—२

सादर समर्पित

पूज्य पिता को—

जिनकी पुण्य-छाया में मैं बढ़ा-पला

तथा

जिनके चरणों में

बैठ कर मैंने विद्या-ज्ञान

प्राप्त किया—

—बेचन

कहानियाँ

१	पइसवा बैरी	१
२	जहां प्रतिभाएँ मरती हैं	७
३	किरण की परिछांही	१२
४	बहता खून	१६
५	पचास वर्ष	२३
६	वह कवि था	३०
७	दार्शनिक हँसा था	३५
८	देव-मन्दिर	३९
९	चुन हो	४४
१०	सिगरेट जल रहा है	४८
११	अमीरी का खून	५८
१२	भेल सावन मास	६८
१३	इन्सान की लाश	८०
१४	२६ जनवरी की रात	९५

हमारी ओर से

बेचन की प्रस्तुत कहानियाँ 'इंसान की लाश' आपके सामने है। मैं कैसे कहूँ कि यह कहानियां अच्छी हैं? आप स्वयं ही कहें कि ये कहानियाँ कैसी हैं? लेकिन इतना मैं अवश्य जानता हूँ, कि इन कहानियों में इन्सान की जिन्दगी की सच्ची रूप-रेखा खींची गई है। इंसान की बेगुनाह लाश चिल्ला चिल्ला कर कहती है कि सचमुच में ही आज के इंसान पर हैवान गालिब है। लेकिन.........।

संग्रह की अधिकांश कहानियाँ नवराष्ट्र नवशक्ति, नई कहानियाँ, लोक समाचार, प्रकाश, इत्यादि पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

पुस्तक के प्रकाशन में श्रद्धेय श्री तारकेश्वर प्रसाद जी, भूतपूर्व सम्पादक "बीसवीं सदी" एवं वर्त्तमान सम्पादक 'लोक समाचार' का जो सहयोग हमें मिला उसके लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापन शब्दों द्वारा नहीं कर सकता।

अपनी ओर से एवं लेखक की ओर से मैं उन सभी मित्रों एवं सहयोगियों का आभारी हूँ, विशेष कर श्री 'अनुज' एवं 'प्रवासी' का जिनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर यह संग्रह तैयार हुआ।

आशा है पाठक पुस्तक का आदर करेंगे—

—'पथिक'
संपादक

दो शब्द

ये कहानियां, जीवन की रेखाएँ। रेखाओं में ही युग और जीवन के चित्र। कहानियां छोटी, परन्तु, अपने में पूर्ण। इतिवृत्तात्मकता के जटाजाल से मुक्त, साफ-सुथरी, स्पष्ट। जीवन के स्पर्शों से जीवन्त, और कुण्ठाओं से मुक्त। स्वाभाविक और सहज भावना जगी कि इस कलाकार का विकास हो, कलाकार की साधना का विकास हो।

इन कथाओं में युग की अनुभूतियाँ तथा प्रेरणाएँ हैं। कलाकार ने युग की करुणा को नाना रूपों में देखा है और सहानुभूतिशीलता के साथ देखा है। चूंकि युग की दुखानुभूतियाँ आर्थिक हैं, इसलिए इन कहानियों में मुख्यतः वैसी ही अनुभूतियाँ शब्दांकित हुई हैं। वर्तमान सामाजिक अर्थव्यवस्था में किस प्रकार श्रम तथा कला का दम घुट रहा है, यह पहली तथा दूसरी कहानी में चित्रित है। 'बहता खून' में भूमि-समस्या का संकेत है। 'पचास वर्ष' सामाजिक अथवा वैवाहिक समस्या

की कहानी है। इसमें भी वैषम्य पर ही अर्थात् वैवाहिक वैषम्य पर प्रहार किया गया है। 'वह कवि था' में पलायनवाद का अन्त कर संघर्ष करने की प्रेरणा है। एक कहानी युद्ध और शान्ति की समस्या से सम्बद्ध है। कोई-कोई कहानी मनोवैज्ञानिक है। जीवन के ललित पक्ष की भी उपेक्षा नहीं हुई है। सबसे अधिक प्रसन्नता यह देखकर हुई कि इन कहानियों में अनुभूति की मात्रा पर्याप्त है और प्रेरणाएँ स्वाभाविक हैं, अस्वाभाविक नहीं। कई कहानियों में चरम विन्दु (कलाइमेक्स) का अभाव ही चरम विन्दु बन गया है। कुल मिलाकर ये कहानियां काफी प्रभावोत्पादक हो गई हैं और काफी कलापूर्ण हैं। इनमें स्वाभाविक तथा कलात्मक प्रगतिवाद की झलक मिलती है। मैं ऐसे स्पस्ट दृष्टिकोण वाले कलाकार की उत्तरोत्तर सफलता का अभिलाषी हूं, क्योंकि पाठकों को विचारों के जंगल में भटकनेवाले और साहित्य को भटकानेवाले कलाकारों से मुक्ति मिलनी चाहिए।

—*रामदयाल पाण्डेय*

११-१२-५३ 'पाटल'—सम्पादक

पड़सवा बैरी

किसन मिल में सन् १६४५ से ही मैं वेतन बाँटने वाले किरानी का काम करता हूं। न जाने इन मजदूरों की कितनी स्मृतियाँ मेरे पास हैं, जिन्हें यदा-कदा दुहराता रहता हूं। यह कहानी भी उनमें से एक है।

मुखी अब भी किसन मिल में काम करती है लेकिन उसका वह रूप न रहा, यौवन न रहा, जो बरबस अपनी ओर सभी को आकर्षित कर लेता था, उदासी छायी रहती है उसके ऊपर।

एक दिन मुखी वेतन लेने आयी। उस दिन मुखी से मेरा पहला परिचय था। वहीं पर उसने निशान बनाये और हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं रुपये गिन रहा था, बस तीन ही तो पुरे थे कि मेरे हाथ रुक गये। मैंने रुपया मुखी की ओर बढ़ा दिया, वह मेरी ओर देख रही थी।

मैं भी उसे देखने लगा। उसके चेहरे पर जगह जगह

काली रेखाएं बन गई थीं । सुडौल चेहरा गोरा था अवश्य लेकिन कोयले और धूल से लिपट कर धूमिल हो गया था । साड़ी मामूली सा मारकीन का टुकड़ा होगा; जिसमें न कहीं किनारा था और न खूबसूरती ! कलाई पर दो-दो काँच की चूड़ियां और मांग में सिन्दूर अवश्य बहुत अच्छा लगता था ।

मुखी रुपये लेती हुई बोली—"बाबू दो दिन की मजूरी है न, कि तीन दिन की !"—वह मुस्करा रही थी !

"तीन दिन की ।"

रुपयों की ओर देखकर वह फिर बोली—"मेरा...रहता तो इससे दूने रुपये होते बाबू ।" सहज चंचलता में झेंपती सी मुखी ने कहा ।

"हाँ, तो क्या तुम्हारा " मैं उसकी ओर देख रहा था ।

"हां बाबू, मेरा आदमी बंगाल में नौकरी करता है । यहां उसे जी नहीं लगा । एक दिन, आपके पहले जो किरानी था न, उससे झगड़ गया । करता भी क्या बाबू ! पन्द्रह दिनों से वह उसे मजदूरी नहीं दे रहा था । कहता था—मुझे कितना दोगे ? मेरे आदमी ने कहा—"कुछ नहीं दूँगा, कमाया मैंने और लो तुम ! तुमको भी तो मालिक से पैसे मिलते हैं ।" लेकिन वह बदमाश था, उसने मालिक से कहकर उसे भगा दिया । तब क्या उपाय था, बाबू ! नौकरी तो करनी ही पड़ती, नहीं तो

मैं कैसे खिला सकती, अभी तो बहुत सा कर्जा इस कपड़े के, चूड़ी के, घर के चुकाने हैं। मजदूरी तो देखते ही हो कितनी मिलती है! इसलिये चला गया बंगाल कमाने।"

मैं मुखी की पूरी बातें सुन भी न सका था कि बोल उठा- "उसे फिर बुला लो न यहां, मैं नौकरी में रख दूंगा!"

मुखी का चेहरा मेरी बातें सुन खिला नहीं, वह एकाएक उदास हो गई।

साड़ी का फटा हुआ अंश जो उसकी छाती पर आने लग गया था, उसे संभालते हुए उसने उत्तर दिया—"परसों उसकी चिट्ठी आयी थी बाबू कि वह बीमार है, मलेरिया हो गया है उसको!"

इतना कहते कहते वह फफक कर रोने लग गई। वह अपनी साड़ी के गंदे अंचल से अब अपनी आंखें पोंछने लग गई थी।

सहसा मिल के पास फैली बगल वाली झोपड़ियों के मध्य से स्त्रियों के गाने की आवाज आने लग गई—

"रेलिया न बैरी,
जहजिया न बैरी
उहे पइसवा बैरी हो
देसवाँ, देसवाँ, भरमावे
उहे............।"

कई स्त्रियां रो कर गा रही थीं और आगे आगे दो

तीन पुरुष अपना उदास चेहरा लिये हुए जा रहे थे। छोटी छोटी गठरियां उनके साथ थीं। वे मजदूर ही थे, जो कम मजदूरी मिलने के कारण गांव से बाहर दूसरी जगह पैसे कमाने जा रहे थे। कुछ छंटनी के शिकार थे।

मुखी उनकी ओर मुखातिब हुई। मैं भी बढ़ा। मुखी अब भी आंखें पोंछ रही थी। उसके मुंह से शब्द निकलने लगे—

"बाबू मेरा आदमी भी फागुन के बाद ऐसे ही बन-ठन कर परदेश गया था। मैंने भी यही गीत गाकर उसे विदा किया था। लेकिन..."

"मैं समझ गया—लेकिन वह एक बार भी पैसे नहीं भेज सका, बीमार हो गया।"

मैं मिल के घेरे वाले तार को पकड़ कर खड़ा हो गया। मुखी झटपट पैर बढ़ाती, अपना सिर जमीन में गड़ाये, झोपड़ी में घुस गई। मैं एक टक उस ओर देखता रहा था और क्या सोच रहा था, वह सब अब पूरा याद नहीं, कुछ कुछ याद है—मुखी और उसका पति उस समय बिछुड़े हैं जब कि प्रकृति से उन्हें मनोरंजन और प्यार का वरदान मिला है। सभी को मिलता है। लेकिन मुखी...उसका उपयोग अधिकांश नहीं कर पाते—मुखी की जवानी मिल के अहाते में बेबस बीत रही थी और उसका पति...शायद कुछ पैसों के लिये...

क्या हो गया है इस दुनियाँ में ? मेरे सेठ की बेटी

विधवा होकर भी कितनी खुशनसीब है और मुखी सधवा...

सोचते सोचते मुझे अपना जीवन याद आने लग गया—मैं...मैं क्या हूं ? एक किरानी, सेठ की दया पर पलता, हूँ, बस और क्या ! वह जिस समय चाहे मेरी रोटी छीन सकता है । मैं उसकी झिड़कियाँ सुनता हूँ इसलिए कि बेकार न हो जाऊं, भूखों न मर जाऊं ! क्योंकि आज की सरकार काम करने वालों को काम नहीं दे सकती, गरीबी दे सकती, जीवन नहीं मौत दे सकती, इससे अधिक कुछ नहीं—आराम नहीं ।

किन्तु कुछ क्षण बाद ही में सजग हो गया । मुखी मेरी ओर हाथ में एक कागज लिए दौड़ी आ रही थी। पास आने पर मैं समझ गया कि यह एक पोस्टकार्ड है जिसपर पेंसिल से कुछ लिखा है। मुखी ने मेरे हाथ में कार्ड डालते हुए कहा—"जल्दी से इसे पढ़कर तो सुनाव ।"

मैं चन्द पंक्तियों को एक सांस में पढ़ गया, फिर दुहरा गया, शायद कोई दूसरा भी अर्थ निकल आये, लेकिन कुछ नहीं, कुछ नहीं, अर्थ एक ही था—मैं मुखी की ओर निश्चल देखने लग गया। मुखी अब मुझे पकड़ कर चिल्ला पड़ी—'बोले बाबू क्या लिखा है ?' मेरी आंखें डबडबाने लग गई थीं। आंख भर रही थी और मुखी की मांग में लगी सिंदूर-रेखा भी धीरे धीरे धूमिल हो रही थी—मिट रही थी !

"बोलो बाबू क्या लिखा है ?" इस बार मुखी ने मुझे झकझोर डाला। मेरी आंखों से आंसू की दो बूंदें गिर गईं । मैंने

उसके दोनों हाथ पकड़ कर कहा—"सुखी—तुम्हारा आदमी मलेरिया से मर गया।" मैं आवेश में सब कुछ कह गया।

सुखी मुझसे हाथ छुड़ा कर भाग चुकी थी—दूर...झोपड़ी में कोलाहल मच रहा था।

और मेरे कानों में शब्द गूंज रहे थे—"उहै पइसवे बैरी हो.. पइसवे बैरी हो......"

—०—

जहां प्रतिभाएं मरती हैं

संध्या हो गई थी। बाजार में काफी चहल-पहल और शोर था। आज एक नई कविता 'स्वतन्त्रता' के सम्पादक त्रिवेदीजी को देने जा रहा था। मेरी साइकिल धीरे धीरे अन्धेरी गली की ओर बढ़ी, बकरियों को बचाते, खाटों से टकराते, मैं एक छोटे से मकान के पास रुका। नाली की बदबू और पखाने की दुर्गन्ध से नाक फट रही थी। मैंने आवाज लगाई, कमरा खुला। एक काली छाया मेरे सामने खड़ी थी —

"कौन? कुमार! आओ, अन्दर ही—"

कमरे में पूर्ण अन्धकार एवं सन्नाटा था। बड़ी सावधानी से टटोलता हुआ एक कुर्सी पर बैठा—संभला हुआ भी था—कहीं गिर न जाऊं।

त्रिवेदीजी ने सड़क पर आकर दो तीन आवाज लगाई—चन्दू कुचवान से माचिस मांग लाये। लालटेन जला उस धुंधले

प्रकाश में हर चीज साफ तो नजर नहीं आती थी। मैंने एक अखबार को खींचते हुए त्रिवेदी जी के प्रश्नों का उत्तर देने लग गया—"आपके दर्शनार्थ चला आया।"

—सरसर कर किसी चीज के गिरने की आवाज आई। नीचे मकई का भुंजा पड़ा था और त्रिवेदीजी उसे उठाने के लिये झुक रहे थे। मैं मौन हो गया।

"मकई का भुंजा बड़ा मीठा लगता है, कुमार! मुझे बहुत पसन्द है। लो न थोड़ा।" मैंने हाथ बढ़ाया।

कमरे में इधर उधर कहीं कपड़े अस्तव्यस्त पड़े थे, कहीं अखबार और पुस्तकें पड़ी थीं। एक विचित्र महक अजायब घर की सी ही आ रही थी। मैंने अब त्रिवेदीजी को देख उनके भावों को पढ़ना चाहा। और कविता निकाल कर देने ही वाला था कि इतने में किसी ने पुकारा—

"त्रिवेदी जी!"

त्रिवेदीजी ने हस्ताक्षर बनाये। लिफाफा खोला—

Daughter ill. Send money.

मैं असमंजस में पड़ गया। कितने अशुभ समय में आया। त्रिवेदीजी का वेदनामिश्रित गंभीर चेहरा तार पर झुका था। ऐनक से ढंकी आँखें डबडबाने लगी थीं। पतला दुबला शरीर मूर्ति सा निश्चल था।

"त्रिवेदी जी!" मैंने उनकी तंद्रा भंग करते हुए कहा। मैं समझ रहा था कि त्रिवेदी जी क्यों मूक हैं।

"कुमार रुपये……। मैं क्या करूं कुमार? दो मेरे

बच्चे तो दरिद्रता की इसी भट्ठी में झुलस कर मर गये। अब…।" त्रिवेदी जी ने चश्मा उतार कर अपने आंसू पोंछे।

मैंने कहा—'प्रेस से…'

'प्रेस से तो मैं पहले ही एडवांस ले चुका हूं। अब मैं किस मुंह से रुपये मांगूँ। ७५) की नौकरी पर कौन ५००) की रकम उधार देगा। सभी मित्रों का भी मैं ऋणी हो चुका हूं। अब किसके आगे हाथ फैलाऊं।' त्रिवेदी जी ने खांसते हुए कहा।

मैंने अपनी अक्ल लड़ाई—'आपने लिखी बहुत सी चीजें है, वही बेंच डालिये न, कुछ निकल आये।'

त्रिवेदी जी का हृदय अब अधिक करुणा विगलित हो उठा था। उन्होंने अपार वेदना अनुभव करते हुए अपना मुंह खोला—'कुमार, मैंने क्या नहीं लिखा। अपने खून को सुखा मुफ्त प्रधान सम्पादक के संपादकीय भी लिखता हूँ, लेकिन नाम उनका छपता है। किशोरी मुरारका की कहानियां कितनी प्रसिद्धियां पा चुकी हैं—उसका लेखक मैं भूखों मरता हूँ। पैसे पैसे का मुंहताज हूं। प्रकाशक मिश्रा के सैकड़ों अनुवाद तुमने पढ़े होंगे। उन अनुवादों को मैंने चन्द रुपयों पर बेचा है। मैं गरीब हूँ। दिन रात सुबह शाम परिश्रम करता हूँ फिर भी गरीब हूं। प्रेस की ड्यूटियों में अपना सोना हराम करता हूँ, जो प्रकृति से मुझे मिली है, फिर भी भूखा हूँ। मेरे बच्चे मर रहे हैं।' भाषण की शैली में त्रिवेदी जी बोलते जा रहे थे। मैं मूक था। इस बार मैंने अपना अन्तिम अस्त्र चलाना चाहा।

'लेकिन गांव तो चले जाइये, शायद वहां कोई दे दे। अभी

को भी देखना जरूरी है न ।'

'वहां रुपये···मेरे पास है क्या ? एक झोपड़ी पर किसे कर्ज मिलता है ! मेरी पत्नी के रोने और मांगने पर तो लोग कुछ दे भी दें क्योंकि वह स्त्री है लेकिन मेरी बेबसी पर तो लोग हंसेंगे ही । क्योंकि आज के समाज में योग्यता का मूल्य रुपया है । खाली हाथ घर जाकर क्या करूंगा कुमार ! बच्ची की लाश फेंकने के लिये तो बहुत लोग मिल जायेंगे ।'

मैं चुपचाप उठ खड़ा हुआ । विद्वान को सांत्वना देना मेरी बुद्धि के बाहर की बात थी ।

मैं साइकिल पर सवार भारी दिल लिये चला जा रहा था । रह रह कर मेरे कानों में मेरी कविता की पंक्तियां गूंज उठतीं—

"प्यार का दो कण लुटा कर,
अश्रु का उपहार पाकर,
जल रहा मुसका रहा है,
सो रहा पर जागता जग

दूसरे दिन मित्रों से रुपये इकट्ठे कर त्रिवेदी जी के चरणों पर रख दिया । वे हठात् बोल उठे—

"लेकिन·········।"

"लेकिन," मैं समझ गया । वे इस रकम को वापस नहीं कर सकते । त्रिवेदी घर जाने के लिये तैयार हो गये । एक फटा पुराना सा कोट, मैली खादी की धोती में लिपटे, उन्होंने दरवाजा बन्द किया । कोचवान चन्दू से इस प्रकार क्षमा याचना करने लगे मानो फिर नहीं लौटेंगे । बगल वाले

दुमंजिले से मालकिन सब देख रही थी। उसने त्रिवेदी जी से किराया लेने नौकर को भेजा—

"त्रिवेदी जी घर जा रहे हैं, लेकिन किराया तो देते जाइये। कई महीने हो गये।"

मेरा जी जल गया। इच्छा हुई कि कह दूं "नहीं मिलेगा, जो करना हो कर लो।"

लेकिन त्रिवेदी जी की सौम्य मूर्ति को देख कर चुप था।

इतने में चन्दू बोल उठा—"बाबूजी कि भागलो जाय छये।"

त्रिवेदी जी खांसते हुए बढ़ते जाते थे। स्टेशन तक आते आते उनकी खांसी बढ़ गई—रक्त मिश्रित कफ कई बार उन्होंने थूका। मेरा माथा ठनका—"त्रिवेदी जी..." मैंने थूक की ओर देखते हुए कहना आरम्भ किया।

"थूक में खून है न...यह नई बात थोड़े ही है! मैं ठीक हूं। मुझ ऐसे कितने गरीब अभागे ऐसी परिस्थिति में हैं इसलिए मैं इस खून ने घबड़ाता नहीं। मुझे संतोष है—समय बदलेगा और जीवन भी..."

मैं अपने मन में सोचने लगा—"कैसा गया गुजरा देश और उसका शासन। त्रिवेदी ऐसी हजारों प्रतिभाएं भूखों आजाद देश में मर रही हैं। लेकिन देशके कानों पर जूं तक न रेंगती है। वे उठने की कोशिश नहीं करते, गिरना पसंद करते हैं।"

किरण की परिछांही

एक रहस्यात्मक दृष्टि से वह इस खंडहर को देख रहा था। जो एक इमारत की कुछ ईंटें, कुछ पत्थर और एक छोटी-मोटी ढहती दीवाल के अवशिष्ट मात्र रह गये थे। वह मनुष्य कभी-कभी अपनी दाढ़ी पर हाथ रख इधर-उधर चौंककर देखने लग जाता—आगे बढ़ता, ईंटें उठाता, मानो कोई पुरातत्ववेत्ता हो, लेकिन उसके चेहरे पर कुछ जान लेने के बाद भी मुस्कराहट की जगह गहरे विषाद की रेखा थी। शायद वह उस मकान की इस दशा पर दुख प्रकट कर रहा था।

उसकी आंखों के सामने अतीत की स्मृतियां साकार हो उठीं। ... ...

किसी ने पुकारा—'परदेशी खड़े-खड़े क्या घूर रहे हो? मैं कोई अजनबी चीज नहीं—लड़की हूं; हटो मेरे रास्ते से—'

लेकिन परदेशी न हटा—वह देखता रह गया। वह [illegible]—

कमर पर रखा घड़ा, स्फीत वक्ष, बड़ी-बड़ी आँखें। वह आगे बढ़ी लेकिन सहमती, इतने में सहेलियों ने पुकारा—'आती क्यों नहीं रे! जल्द आ, नहीं तो हम चली जायँगी।'

किरण मुस्करायी। परदेशी की ओर देखा और बढ़ चली...

लेकिन परदेशी कहां जाय? वह तो परदेशी ही था, उसका घर कहाँ? और फिर परदेशी भी आगे बढ़ने लग गया उन पद चिन्हों के पीछे पीछे... ... ...

❀ ❀ ❀

किसी ओर से रूनझुन की आवाज आई। परदेशी ने चौंक-कर पुकारा—'किरण, मैं आ गया तुमसे मिलने!'

'कौन? गोपाल! आओ आओ'...

और फिर गोपाल—परदेशी आगे बढ़ा—वह आगे बढ़ता जा रहा था। जंगलों के बीच, पहाड़ियों पर, ऊँचे-नीचे रास्तों पर। और किरण गाती जाती थी भागती, मुस्कराती।

गोपाल थक चुका था। वह बैठ गया एक शिला पर। इधर-उधर पहाड़ियों में अब वह जाये कहां? उसे अब कोई नहीं पहचानता—किरण उसे पुकारती है लेकिन मिलती नहीं, मजाक करती है और छिप जाती है झाड़ियों में.....

दस साल पहले उसे सभी पहचानते थे। किरण पहचानती थी, उसके पिता और सखियाँ और कौन? वे लाल वर्दीवाले भी जिनके डर से गोपाल शहर छोड़ कर पहाड़ चला आया था।

और एक दिन उन्होंने उसे पहचान ही लिया, किरण रोती रही—'परदेशी को छोड़ दो; बड़ा भोला-भाला है।'

लेकिन परदेशी नहीं रुका, चला गया दूर देश। किरण की आंखों से दूर।

अब किरण अकेली रहे कैसे? वह रोती........बूढ़े बाप को किरण का रोना अच्छा नहीं लगता।

और किरण अपने पिता से सुनती—'गोपाल— गोलियां— आजादी—हत्या—षड्यन्त्र! यह सब क्या है? वह हँस देती, मुस्कराती, आंसू बहाती और फिर गाती भी विरह गीत......

*   *   *

गोपाल चौंक पड़ा—किरण ने झुरमुट से पुकारा—'परदेशी, बड़े बुजदिल हो तुम। इतने दिनों बाद आये, प्यार भूल गये। आओ चलें झील में तैरने।'

'लेकिन किरण तुम... ...' परदेशी निराश हो चुका था।

'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, आओ मेरे साथ। हम तैरेंगे और फिर अपने भूले परदेशी को अच्छी-अच्छी चीज खिलायेंगे, पहाड़ पर घुमायेंगे, गाकर, नाचकर गीत सुनायेंगे ....
चलो परदेशी झील में—'

परदेशी उठा, आगे बढ़ा और किरण गाती जाती वही गीत, जिसे उसने परदेशी से मिलने के पहले दिन गाया था—

'तुम मेरे प्यार हो, मैं तेरा प्यार हूँ।
पहली मुलाकात में ही बेकरार हूँ।'

झील आ गई। किरण नौका पर चढ़ गई। परदेशी भी चढ़ने को आगे बढ़ा, किरण ने ठठा कर हँस दिया और नौका आगे बढ़ गई। परदेशी नदी के ऊंचे किनारों से कूदा ताकि वह

नाव पर चला जाय—लेकिन वह पानी में गिर गया। नौका आगे बढ़ गई।

'किरण, यह मजाक मुझे पसंद नहीं। जाड़ों की रात है। मैं ठिठुर रहा हूं, रोको नौका।'

'परदेशी तैरो तेजी से आओ, नौका तो धीरे २ जा रही है। तुम चढ़ना चाहते हो नहीं—'और किरण नौका पर गाने लगी वही पहाड़ी गीत . . . .

चांदनी छिटकी हुई थी। किरण की परिछांही उस झील के वक्षस्थल पर गोपाल को दिखाई पड़ रही थी और वह नौका को पकड़ने आगे बढ़ रहा था · आगे · ·

* ❀ *

स्वप्न—सबेरा हो चुका था। गीधों की टोलियां लोथ के चारों ओर शान्त बैठी थीं मानो किसी के मरने का ग़म इन्हें हो और कौवे काँव-काँव कर रहे थे मानो इस मृत्यु की सूचना दे रहे हैं। · · · · ·

बहता खून

"वह जमीन का टुकड़ा मेरे जिगर का टुकड़ा है, वहां मेरा खून बहता है; हुजूर, खून बहता है।"

बूढ़ा कांप गया। आँखों से अश्रु की धारा बह निकली— "और उस टुकड़े को आपने मेरे हक से छीन लिया। मैं बारह साल से इसके लिए लड़ता रहा, लेकिन हाकिम, तुमने आखिर फैसला दिया उस अमीर जमीन्दार के हक में ही जो दस हजार बीघे जमीन का मालिक है। मुझे लूटता है। तुम्हारी थैलियां भरता है और हम गरीबों के जिगर को कुचलता है।"

'औडर ! औडर !!' हाकिम ने हथौड़ा टेबुल पर बजाड़ दिया।

"तुम औडर कहकर मेरी आवाज नहीं रोक सकते। तुम्हें नहीं भूलना पड़ेगा, वह मेरी जमीन है, इसी बूढ़े नौशाद की जमीन है, जिस जमीन के बूते पर मैंने आज तक भीख नहीं मांगी। जिसके बूते पर मेरे बाप दादा ने किसी की हेकड़ी

नहीं सुनी। इसी जमीन के टुकड़े पर मैंने मंहगाई और गरीबी का सामना भी किया। उसी जिगर के टुकड़े को तुमने मुझसे छीन कर दूसरे को दिया। मेरे खान्दान ने उस जमीन पर अपना खून बहाया है। यकीन करो मालिक मैंने आज तक अपना ईमान नहीं बेंचा। क्या मैं झूठ कह सकता हूँ ? यकीन करो मालिक मैं झूठ नहीं कहता, जमीन मेरी है, मुझे मेरा हक दो।"

बूढ़ा नौशाद हाकिम के पैर से लिपट गया। और उसके आंसू से हाकिम का पैर भींग रहा था, अदालत की जमीन पट रही थी लेकिन हाकिम का दिल नहीं भींगता था। क्योंकि कानून और रिश्वत के शिकंजे में कैद उसकी आत्मा सूख सी गई थी। वह कागजी सबूत चाहता था, केवल इन्सान की सचाई नहीं।

चपरासी ने बूढ़े को गले पर हाथ रख,यह कह कर अदालत से बाहर निकाल दिया—"जजमेंट हो गया बूढ़े ! चला जा, घर में सिर धुन। अब कुछ नहीं होगा।"

बूढ़ा नौशाद नाशाद जिन्दगी लेकर गांव के सरहद में घुस पाया। बच्चों ने बाबा बाबा कहकर उसे घेर लिया। इसका प्रत्युत्तर वह कुछ न देकर केवल गंभीर वेदना में डूबा एक बार मुस्कुरा ही सका।

रामू मुन्शी ने मुस्कुरा कर मुकदमें का हाल पूछा ! नौशाद ने अन्यमनस्क दबी जबान से उत्तर दिया—'जो होना चाहिए था वही हुआ।'

नौशाद की आंखें फिर भर आईं। इसे छिपाने के लिए उसने एक बच्ची को गोद में उठा लिया और मुस्कुराकर प्यार करने का प्रयत्न करने लगा। बच्चे को लेकर वह घर के दरवाजे पर आ बैठा। उसने उस समय अनुभव किया कि वह बहुत थक गया है। छोटा बच्चा मिठाइयों की रट लगा रहा था, शायद इसे भी वह नहीं सुन रहा था। एक बार चेतना जगी तो उसने उत्तर दिया--"बाबा अब मिठाइयां नहीं लायेंगे बेटा।"

नौशाद रो पड़ा और कुछ सोचने भी लगा। सिर झुका हुआ था। आंखें नीचे गड़ी हुई थीं। चेहरा उदास था।

कमर में मैली सी एक धोती और शरीर पर मैला सा एक गमछा रखा था।

गांव की नीरव संध्या आई। नौशाद की बेटी आमना दो बैल और गाय के एक जोड़े को चराकर लौट रही थी। बाबा को देखा तो हाथ से छड़ी फेंक कर, गले से लिपट गई और पूछने लगी--"अपने मुकदमे का फैसला तो हो गया बाबा?"

"हाँ बेटा फैसला तो हो गया। लेकिन अब"—नौशाद अधिक न कह सका। फफक-फफक कर रो पड़ा।

चौदह साल की आमना के लिए अब यह समझते देर न लगी कि अब जमीन अपनी न रही।

मां आंगन से, सिसकना सुनकर बाहर आ गई। आमना चिल्लाती हुई मां के गले से लिपट गई—"मां अब जमीन अ-

पनी न रही ।"

मां भी अधिक तीव्रता से रो पड़ी। बूढ़ा अधिक सिसकने लगा। उस समय समूचे परिवार में एक ऐसा दृश्य छा गया मानो किसी की मृत्यु हो गई हो।

पड़ोस के लोग एकत्रित हो गये। पुरुष नौशाद को जाने अनजाने ही ढाढ़स बंधा रहे थे, स्त्रियाँ आमना और उसकी माँ को। तब तक आमना का बचपन का साथी नाथू, जो इन दिनों आमना के साथ ही गाय चराने जाता, पहुंच गया। वह भी आश्चर्यचकित था, क्योंकि आमना तो अभी-अभी उसके साथ ही गाती हुई गाय चरा कर आई थी। आमना नाथू को देख कर अधिक अधीर हो उठी--'नाथू, मेरा बाबा जमीन हार गया। मालिक ने मेरी जमीन छीन ली।'

पड़ोसियों से नौशाद कह रहा था—"अब क्या लेकर जीयेंगे भाई। बस तीन, केवल तीन ही बीघे जमीन तो मुझे थी। अब तो भूखा रहना होगा या नहीं तो ... "

आमना—"हम जमीन नहीं छोड़ सकते। क्या खाकर मालिक लड़ेगा मुझसे। बाबा, हम जमीन नहीं देंगे। जमीन मेरी है। हमलोगों ने उसका कर्ज़ नहीं खाया, जो वह मेरी जमीन लेगा।"

बूढ़ा—"बेटा धन वाले कहते हैं अगर मेरे रुपयों के पास गरीबों का एक पैसा भी पड़ा हो तो उसे अपने में मिला लो। क्योंकि गरीब एक पैसे के लिए झूठा हो सकता है, अमीर हजार रुपयों के लिए झूठा नहीं हो सकता। मेरी जमीन उसकी

जमीन के पास है वह जबरदस्ती उसे लेना चाहता है। हम गरीबों को वह कुचलेगा।"

नाथू—"क्या बाबा, अब कोई अदालत नहीं रही जो मालिक जबरदस्ती करेगा !"

"मुल्क की सबसे बड़ी अदालत में तो लड़ चुका बेटा, नाथू। अब तो केवल खुदा की अदालत है। सुनते हैं वहां भी अब गुनाहगारों को सजा नहीं मिलती !"

'गुनाहगारों को सजा खुदा से नहीं मिलती ?'…नाथू आमना को साथ ले इतना कहता हुआ चला गया।

सुबह हुई। मालिक के सिपाही जमीन के चारो ओर लाठी, भाला, फरसा और संथाली तीर लिए हुए घूम रहे थे। खेत में पका हुआ धान लहरा रहा था।

अदालत के सिपाही ने डिगा बजा दिया। आमना और नाथू दोनों खेत की ओर दौड़ते हुए आ रहे थे। करीब सौ स्त्री पुरुष मजदूरों का गिरोह गा-गा कर खेत काट रहा था।

जमीन की सरहद में घुसते ही आमना पुकार उठी—"पहले मेरे जिगर के टुकड़े कर डालो तब खेत काटना।"

नाथू ने कई मजदूरों के हाथ से हसिया छीन ली। इतने में एक सिपाही ने नाथू के हाथ पर कस कर लाठी का वार किया। वह गिर पड़ा। आमना नाथू की ओर लपकी। तीरंदाज संथाली ने उसे भी घायल कर दिया। एक बच्ची को घायल कर दिया जो प्यार के इशारे पर नाचती थी। जिसके सीने में मुहब्बत का दरिया बहा करता था।

नौशाद ने देखा कि उसकी बच्ची गिर चुकी थी। नाथू के पिता ने देखा कि उसका बेटा घायल हो चुका है और गांव वालों ने देखा कि ग़रीब इन्सान की संतान मौत के कगारे पर खड़ी है।

गांव से निहत्थे किसानों की टोलियां चलीं जिस तरह चीटियों का दल एक कतार में अपने गन्तव्य स्थान को जाता है। नौशाद की जमीन पर गांव एकत्रित था। नौशाद सिपाहियों के घेरों को तोड़ता हुआ आगे बढ़ा। तीरंदाज संथाल ने उसे सावधान किया। लेकिन जो इन्सान अपने जिगर का टुकड़ा खो चुका है, जिसने अपना खून पसीने की जगह बहाया है, उसे जीने का क्या अरमान रहता है! वह तो किसी समय अपनी जिंदगी दे सकता है।

चेतावनी को नौशाद अनसुना कर सरहद के अन्दर घुस गया। संथाली तीरंदाज ने नौशाद के सीने से तीर पार कर अपनी कलाबाजी फिर दिखाई।

घायल आमना चीख उठी—"अब्बा!" बेहोश नाथू की चेतना भी जग चुकी थी। हजारों गरीब इन्सान की आंखें इस दृश्य को देख कर सहम उठीं। लेकिन उसका स्वाभिमान अभी जगा नहीं था।

नौशाद के जिगर से खून की धारा बह-बह कर जमीन को सींच रही थी जिस जमीन पर नौशाद का बोया पका धान लहरा रहा था।

नाथू बालसुलभ आवेश में आकर बोल उठा—"देखते

क्या हो, बाप के बेटे हो तो खूनी सिपाहियों का गला घोंट दो।"

एक पन्द्रह साल के नवयुवक की ललकार ने इन्सान को जगा दिया। लोग सिपाहियों पर टूट पड़े। सिपाही भाग गये।

नाथू ने आमना को अपने सीने से लगा लिया। नौशाद की लाश उसी जमीन के बीच दफना दी गई जहां की जमीन उसके खून से पट चुकी थी।

पचास वर्ष

गंगीया अब सयानी हो गई थी। उसका विवाह करना अत्यन्त आवश्यक था। बिरादरी में आये दिन यही चर्चा चलती 'गंगीया तो अब पन्द्रह पार कर चुकी। लेकिन गोबिन्द के कानों पर जूँ तक न रेंगती।' लोग माने-मतलब से गंगीया के पिता गोबिन्द को ताना भी मारा करते। इस साल फसल अच्छी लगी थी। गोबिन्द के हृदय में भावनाओं की झड़ियाँ लग रही थीं—दो सौ रुपये जेवर में खर्च करूंगा; कम से कम पाँच सौ तो दूल्हा को तिलक भेंट करूंगा, गांव वालों को भी खिलाने का अच्छा इन्तजाम होना चाहिये। पूरे हजार का हिसाब किताब लगा।

गोबिन्द दूल्हा की तलाश में रिश्तेदारों के यहां तरकारियां चखता फिरता. दूर दूर के रिश्तेदार भी आज याद आने लग गये थे। पूरे छः महीने तक गोबिन्द ने दौड़ लगाई, हजार दो हजार से तो कम में कोई बात

ही नहीं करता। अगर लड़का थोड़ा पढ़ा लिखा हो तो फिर पूछना ही क्या 'दर्शन दुर्लभ'। गोबिन्द का कलेजा यह सब सुन सुन कर बैठा जाता था। उसकी आकांक्षाएँ क्रमशः विलीन होती जा रही थीं। अब इस साल भी गंगीया के विवाह की कोई आशा न दीखती थी। समय करीब था गोबिन्द गांव गांव घूम रात दिन एक कर रहा था। इसी समय उसे मालूम हुआ कि गांव में भीषण बाढ़ आ गई है, खेत डूब रहे हैं, फसल ढह रही है। लोग जान माल ले किसी दूसरे स्थान को जाने की चेष्टा कर रहे हैं। गोबिन्द अकेला था, झटपट गांव जाने की तैयारी करने लगा।

दूसरे दिन वह गांव पहुंचा। सारा गांव जलमग्न था। घर घर में नदी की धारा बह रही थी। एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे जाने के लिये नाव की आवश्यकता थी। जान माल की हानि का पूछना ही क्या। बाढ़ के आकस्मिक वार ने बच्चों को माता से बिलगा दिया, मनुष्य की लाशें बहती दिखाई दे रही थीं। पशु पानी में तैरते जा रहे थे। कोई भी किसी का रक्षक नहीं था। चारो ओर हाहाकार मचा हुआ था। लोग पानी से बचे खुचे अन्न वस्त्र छांक रहे थे। खेत का तो पूछना ही क्या। गोबिन्द की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। जो मकई की फसल आज से दस दिन बाद कटने वाली थी वह कोशी के गर्भ में विश्राम लेने लग गई थी। किसान छाती पीट पीट रो रहे थे। उनकी दशा एक ऐसे आदमी की तरह थी

जिसके हाथ पैर बंधे हों और उसके सामने ही उसका घर धू धू जल रहा हो।

गोबिन्द के घर में न नाज था और न वस्त्र।

❀ ❀ ❀

गंगीया की शादी अब गोबिन्द के लिये एक समस्या थी। इस समस्या की पूर्ति करने के लिये उसके पास कोई भी साधन नहीं था। गंगीया को देखते ही गोबिन्द की आत्मा ग्लानि से दबने लगती। इस पर सामाजिक उलहना उसे अङ्कुश दे रहा था। अब उससे नहीं रहा जाता। वह रुपये की खोज में इधर उधर घूमने लगा। गांव के और किसान भी कर्ज ले रहे थे। गोबिन्द भी सकुचाता हुआ रामलाल के यहां पहुंचा। क्योंकि गोबिन्द ने रामलाल से पहिले भी कुछ कर्ज मां के श्राद्ध के लिये इसी फसल की आशा पर लिया था। फिर भी हिम्मत बाँध, लज्जा को पी, उसने रामलाल से रुपये की याचना की। बहुत अनुनय विनय करने के बाद रामलाल ने दो सौ रुपये दिये। अंगूठा छाप हजार पर लिया। आवश्यकता मनुष्य को जानबूझ कर किसी भले या बुरे काम को करने के लिये विवश कर देती है।

छः महीने बीत गये और धान भी नष्ट हो चुका था। इसलिए साल भर खाने का खर्च भी नहीं निकल सका। इधर जात बिरादरी वाले गोबिन्द को गंगीया की शादी के लिये कोसते रहते थे। एक दिन उसने स्वयं एक औरत को कहते सुना—
"घर में जवान बेटी कुंवारी है लेकिन गोबिन्द को अभी तक

सूझता ही नहीं। गंगीया के उम्र की तो रजनी भी थी उसे दो दो बच्चे हो गये और अभी गंगीया की शादी भी नहीं हुई।" बेचारा गोबिन्द खून का घूंट पीकर रह गया।

एक दिन गोबिन्द भोजन कर अपनी मड़ैया में आराम कर रहा था। उसे रात को नींद नहीं आती थी। वह चिन्ता से घुला जा रहा था। इस समय वह सोच रहा था कि कहा से रुपये लाऊँ, गंगीया की शादी करना बहुत जरूरी है। रामलाल की ओर से वह निराश हो चुका था क्योंकि उसका बकाया बहुत हो गया था। इसी समय रामलाल का मुन्शी गोबिन्द को बुलाने आया। गोबिन्द के कान खड़े हो गये अब उसके लिये अपनी जायदाद बेचने के अतिरिक्त कोई भी दूसरा साधन नहीं था। वह समाज को कोसने लगा—"लड़के वालों को पाल-पोस कर लड़की भी दूँ और ऊपर से दहेज में रुपये। यह कहां का न्याय है!"

रामलाल के बरामदे पर पहुंचते ही उसने देखा पंचों की पूरी मंडली बैठी थी। इसने सबों को प्रणाम किया और अलग एक कोने में बैठने का प्रयत्न करने लगा। हरलाल (गांव का सरपंच) ने गोबिन्द का हाथ लपक कर पकड़ा और पास बैठा लिया। गोबिन्द को आश्चर्य हो रहा था, क्यों मेरा आज इतना आदर सत्कार हो रहा है। पहले तो बरामदे में आते ही रामलाल की फटकार पड़ने लगती थी। लेकिन आज रामलाल गोबिन्द की ओर से प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। और लोग याचक की तरह गोबिन्द की ओर देख रहे थे। गोबिन्द की

मोटी बुद्धि इस रहस्य को समझने में असमर्थ हो रही थी। गोबिन्द इसी संदिग्धावस्था में था कि हरलाल ने पूछा—"बाबू साहब के कितने रुपये निकलते हैं गोबिन्द तुम्हारे पास ?"

"हिसाब करने से ही तो पता चलेगा। मेरी समझ में कोई पांच सौ के लगभग होंगे।" गोबिन्द ने बाबू साहब की ओर देखते हुये कहा।

इधर बाबू साहब की भौं चढ़ गयी। "सोलह सौ से तो कम हो ही नहीं सकता। क्या मुन्शी जी मैं ठीक ही कह रहा हूं न ?"

हरलाल बीच ही में बोल उठा—'सरकार सोलह सौ हो या बाइस सौ, जब रिश्तेदारी ही हो रही है तो लेन देन का सवाल ही क्या है ?"

"रिश्तेदारी ! किससे, किसकी रिश्तेदारी की बातें आपलोग कर रहे हैं। केशो (रामलाल का पुत्र) बाबू से......?" गोबिन्द ने उत्कण्ठा भरे शब्दों में कहा। उसके चेहरे पर मधुर मुस्कान हिलोरें लेने लगी। कुछ क्षण पहले जो फूल मुरझाया था वह खिल उठा। मरूभूमि में चलने वाला राही दूर से ही बालू के ढेर को दरिया समझ फूल उठता है। लेकिन समीप जाने पर वह पाता है रेत का ढेर। हरलाल के उत्तर को सुन ठीक यही स्थिति गोबिन्द की हो गई—"केशो से नहीं, स्वयं बाबू साहब से।"

'ऐसा नहीं होगा।' —गोबिन्द आवेश में उठ ऐसा कहता हुआ घर की ओर भागा।

राह में वह यही बड़बड़ाता जा रहा था—"कैसे नीच है ये लोग। अपने को तो सरपंच कहते हैं लेकिन किसी का गला

काटने में हाथ बँटाते उन्हें शर्म नहीं आती? रामलाल की उम्र पचास की है। अब कुछ दिनों में वह दुनियां को छोड़ चलेगा फिर कैसे उस बूढ़े के साथ अपनी सोलह साल की सयानी बेटी की शादी कर दूँ। गंगीया पर मैं ऐसा अत्याचार नहीं कर सकता। भगवान मेरी लाज रख।"

अपने दरवाजे पर आते ही गोबिन्द धांय से गिरा। गंगीया आंगन में चावल कूट रही थी। गोबिन्द की आवाज सुनकर आई तो देखा गोबिन्द बेहोश जमीन पर गिरा है। कुछ क्षण बाद गोबिन्द होश में आया तो बोल उठा—"जा, जा, बेटी मैं ठीक हूं। अपना काम कर, अपना काम कर······"

"बापू तुमको तो ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। आज क्यों ऐसी दशा हो रही है। जरूर कोई बात है। बापू तुमको मुझे बताना ही पड़ेगा।" गंगीया ने दुःखी होते हुए कहा।

'नहीं कोई बात नहीं है बेटी! अब बूढ़ा भी तो हो चला हूं।'

इतना सुन गंगीया रो पड़ी उसने सिसकते हुये कहा—"नहीं बापू तुम मुझसे छिपाते हो। जरूर कोई बात है। मुझे बताओ बापू?"

गोबिन्द की आँखों में जल भर आया वह इस घटना को छिपा न सका। वह सिसक सिसक कर कहने लगा—"बेटी ये जुल्मी पंच तुम्हारी शादी रामलाल से करने को कह रहे हैं। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता। अपनी जायदाद बेचकर उस बेईमान के रुपये चुका दूँगा। लेकिन अपनी बेटी का अपने

हाथों से गला नहीं घोंट सकता।"

इतना सुनते ही गंगीया गोबिन्द के गले से लिपट गई। वह भी फूट फूट कर रो उठी। कुछ क्षण बाद गंगीया ने भर्राये हुये स्वर में कहा—"बापू मैं शादी उसी बूढ़े से करूंगी। तुम अपनी जायदाद मत बेचो। यह तो बाप दादा की निशानी है।"

तब तक पंचों का दल पहुँच चुका था। वे लोग बाहर खड़े गंगीया की बातों को सुन रहे थे। इतने में गंगीया की नजर उन लोगों पर पड़ी। वह बोल उठी—"पंचो मैं अपने पिता को उऋण करने के लिये रामलाल से शादी करने के लिये तैयार हूँ। आप उन्हें सूचना दे दें।"

गोबिन्द इसका विरोध करता रहा पर व्यर्थ। गंगीया की शादी रामलाल से हो गई। छः महीने बाद ही क्षय रोग से पीड़ित रामलाल की मृत्यु हो गई? गंगीया अब विधवा है।

वह कवि था

शहर के एक चौराहे का मोड़। मोड़ के पास दो तीन रेस्टराँ। एक काला सा मस्त आदमी रेस्टराँ के सामने से गुजर रहा है। उसके बाल बिखरे हैं और उस पर परत की परत धूल जम गई है। ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने धूल डाल दी हो। आँखें बिलकुल मधु सी टपकती, लाल-लाल, बड़ी भयानक! उन आँखों पर बांयीं और दांयी ओर से पसीना बहबह कर जम रहा है। उसका लिबास एक साधारण मट मैला सा खादी का कुर्त्ता और पाजामा, पैर में मामूली सा चप्पल। चप्पल और पाजामा समेत ठेहुने से नीचे का भाग भींगा हुआ, जान पड़ता है कि किसी नाले में पांव भींगा आये हो और उसपर सड़क की धूल जम कर विचित्र खूबसूरती पैदा कर रही थी। समष्टिगत रूप से उस मनुष्य का स्वरूप शेक्सपीरीयन भूत (Ghost) सा लगता था।

रेस्टराँ के सामने बाहर बेंच पर बैठी दो औरतें, एक वृद्धा

और एक युवती, चाय पी रही हैं। औरतें निम्न वर्ग की जान पड़ती हैं। वह आदमी उस युवती को बड़े गौर से देखता हुआ निकल जाता है। कुछ आगे बढ़ कर पुनः युवती को देखता है और लौटकर युवती के बगल में ही बैठ जाता है। युवती सकपका जाती है। तब तक रेस्टराँ का ब्याय आर्डर लेने के लिये पास आ जाता है। मस्ती से वह आदमी युवती की ओर देखता हुआ बोल उठता है—"सोडा।"

"सोडा नहीं है बाबू!"

"सोडा नहीं है, कमबख्त क्या होटल बना रखा—लेमनेड लाओ!"

ब्याय अन्दर चला गया। यह आदमी युवती की ओर देखकर हल्की हंसी हँसा। किन्तु युवती सहम उठी। वह उस आदमी की ओर देखकर अब कुछ खिसकने सी लग गई। और उसकी आंखें अत्यन्त दयनीय हो उठीं।

कुछ मिनट में ब्याय लेमनेड का एक ग्लास लेकर आता है। आदमी ने आंख से युवती की ओर इशारा कर कहा—"यहां दो, एक और लाओ।"

ब्यॉय चला गया। अब युवती बड़ी सशंकित दृष्टि से आदमी की ओर देखने लग गई। वह पुरुष अब युवती की ओर देखकर पुनः मुस्कराया और हाथ बढ़ाने का उपक्रम करने लग गया। उसकी अन्तरात्मा कह रही थी कि इसने मुझे चाहा और युवती शायद घबड़ा सी रही थी कि मैं गुण्डों के चपेट में हूँ।

इतने में ब्यॉय पुनः दूसरा ग्लास लेकर आ जाता है उसे लेता हुआ वह पुरुष युवती को भी पीने का एक साधारण निर्देश करता है। युवती ने तब तक चाय समाप्त कर वृद्धा की ओर देखा और दोनों उठ कर होटल मालिक के टेबुल तक गई। वृद्धा ने अपने खूंट से पैसे निकाल बढ़ा दिया।

इन दोनों के उठते ही वह आदमी भी आवेश में आकर उठा और चल दिया। बड़ा बड़ा लम्बा डग भरता वह बढ़ता जा रहा था। होटल मालिक ने उसे बढ़ते देख ब्यॉय को आदेश दिया—"वह चले गये, बिल नहीं दिया ?

ब्यॉय—"शर्बत भी तो पूरी नहीं पी साब।"

मालिक—"जाओ, पैसे मांग लाओ।"

युवती भी बोलने को उद्यत हुई—"पागल है शायद।" बुढ़िया ने युवती की बातों का समर्थन करते हुये कहा—"हां, हां, जरूर पागल है।"

मालिक—"मालूम तो पड़ता है, शायद शराबी है।"

इतना सुनकर रेस्टरां के अन्दर बैठे अन्य लोगों का ध्यान टूटा और वे जिज्ञासा भरी दृष्टि से सड़क की ओर देखने लग गये। और वह आदमी लड़खड़ाता, झूमता आगे बढ़ रहा था। होटल के ब्यॉय ने उसका रास्ता रोकते हुये प्रश्न किया—

"बाबू बिल ?"

"What, दाम क्यों ?"

"शर्बत का बाबू ?"

"ओ शर्बत पिया"—जेब से एक रुपये का नोट निकालता

हुआ—"कितने पैसे ?" और नोट ब्वॉय के हाथ में डाल देता है।

ब्वॉय—"जरा भुनाने दूकान चलना होगा।"

दोनों आगे पीछे चलने लग जाते हैं। युवती और वृद्धा तब तक जा चुकी होती है। ब्वॉय नोट मालिक को बढ़ा देता है। नोट मिलते ही वह एक अठन्नी उस आदमी के सामने रख देता है। उस आदमी का हाथ पैसे लेने के लिये एक प्रश्न के साथ बढ़ता है—"आठ आने क्यों ?"

"दो गिलास के आठ आने साहब।"

"दो गिलास क्यों मैंने कुछ नहीं पिया ?"

"एक गिलास उस औरत को जो दिलाया और मेरा बोतल भी तो पूरा टूटा—आर्डर आपका था!" "अ. आर्डर था और बोतल टूटा। लेकिन उसने कहां पिया ?"

"उसका मैं क्या जानूँ ?"

"ओ तुम नहीं जा···न···ते"—थूकता है—"क्या नाम है तुम्हारा ?" जबान लड़खड़ा सी जाती है।

"नाम से क्या मतलब आपको, मैं नाम नहीं बतला सकता।"

"नाम नहीं बतलाते—फिर क्यों—ओ नाम नहीं······" साइनबोर्ड की ओर उचक कर—"सेन्ट्रल रेस्टरां, थैंक यू फ्रेंड।" वह जाने लग जाता है। इतने में पास खड़े लड़कों की आवाज सुनता है। और उत्तर देने लग जाता है।

"क्या कहा आपने ?"

"कुछ नहीं, जी प्यास लगी है। यही बोलता था कि मैंने

इसके यहां थोड़े खाया है जो यह पानी पिलायेगा।"

"जरूर पिलायेगा, मैंने तो लेमनेड नहीं पिया लेकिन पैसे ले लिया। क्योंकि पानी पिलाओ।"

हठात दो मुसलमान बन्धु होटल से निकल कर अपने पैसों का हिसाब लगाते उस आदमी की बगल मे गुजरे। वह आदमी उन्हें भी रोक कर बोल उठता है—"क्या मैंने पैसे नहीं दिये ?"

"जी, मैं तो अपने पैसे के बारे में बोलता जा रहा था। हमलोगों ने सभी पैसे दे दिये, अब कुछ ही बच रहे हैं।" दोनों पुनः चले जाते हैं। और वह आदमी भी लड़खड़ाता चल देता है।

होटल से निकलकर दो सज्जन बोलते बोलते निकल जाते हैं—"वह कवि है, बहुत बड़ा कवि। लेकिन हालत देखो—भूख मरता है, शराब पीता है, बेकार है।"

दूसरा—"गम भूलने को शराब पीता है।"

पहला—"खाक, यह तो जिन्दगी से भागना है।"

दार्शनिक हँसा था

"महाराज, आज पन्द्रह दिन हो गये मेरा पुत्र बीमार पड़ा है लेकिन उसकी दशा सुधरती दिखाई नहीं दे रही। भगवान जाने बचेगा भी या नहीं बचेगा। न जाने कौन सा ग्रह उसकी भाग्य-रेखा को घेरता चला आ रहा है! यह रही जन्मपत्री।"

एक अर्धवयस्क ने, करीब चालीस की उम्र होगी, खांसते हुए कहा। चेहरे पर गंभीर विषाद की रेखा थी। दाढ़ियों की उजली-उजली खुट्टियों से विचित्र श्रम का दृश्य दिखाई दे रहा था।

पीताम्बर वस्त्रधारी पंडित जी ने पत्रे के दो तीन पृष्ठ को उलटाया, फिर कुछ ठहर कर एक चक्र की ओर देखने लग गये। हठात् उनके मुखारविन्द से शब्द टपक पड़े—"गुरु द्वितीयेश हैं, उनकी महादशा लगी है। सप्तमी शनि है, सप्तम में बैठा है। गुरु की महादशा और शनि के अन्तर में आयुखण्ड की पूर्ति है..... मृत्यु योग है। शायद इसका जीवन..."

"अब क्या होगा देवता?"—बूढ़े के हृदय से कराहती हुई

आवाज निकली, गला रुंध गया ! "शान्ति !......महामृत्युंजय का जाप !"—पंडित जी अधिक गंभीर एवं दृढ़ता से बोले।

"इसकी दक्षिणा !"

"दक्षिणा ! .....ब्राह्मण अपने श्री मुख से दक्षिणा के विषय में स्वयं कुछ न कह सकते ! तुम्हारा धर्म है; जैसी भक्ति होगी वैसी मुक्ति !"

बूढ़े ने पंडित के कथनानुसार संकल्प किया और चलता बना। मन्दिर-द्वार पर एक बड़ी-बड़ी दाढ़ी वाला व्यक्ति उसे देखकर हंसा।

'आप' 'आप हंस क्यों रहे हैं ?'

'हे हे हे, मैं हंसता हूं ! संसार की मूढ़ता और ग्रहों के उन कर्मों पर जिन्हें तुम ईश्वर की दया समझते हो।'

'तो क्या ये ग्रह झूठे हैं ! ईश्वर झूठा है ! पूजा-पाठ माया है ?'

'कुछ दूर तक, जहां तक तुम्हारा ज्ञान जा पाता है। ज्ञान की सीमा के बाद ही मानव माया के चक्र में पड़ता है। नागरिक, तुम ग्रहों को सब कुछ समझ बैठे हो, लेकिन क्या तुमने अपने पुत्र का समुचित औषधि-उपचार किया है ?'

'भाग्य के सामने औषधि-उपचार क्या है ! अगर भाग्य में अच्छा न लिखा होगा तो हजारों उपाय करने पर भी उसका जीवन कष्टमय हो सकता है।'

'माया, भ्रम, मूढ़ता ! ··· और मैं उपचार भी कहां से कर सकूंगा। हम गरीबों को तो ईश्वर का ही सहारा है। जो इस

दुख को देने वाले हैं उनकी ही अराधना करता हूं।'

'हे हे हे, जो इस दुख को देने वाले हैं। ईश्वर दुख नहीं देता! वह तो अपनी जगह है और संसार का कार्य भी चल रहा है। तुम अपनी मूढ़ता से एक वर्ग के द्वारा पीसे जा रहे हो, इसी कारण तुम्हें कष्ट होता है, तुम भूख की ज्वाला में जलकर अकाल के शिकार होते हो। तुम थोड़ी सी मजदूरी पर अपना अमूल्य जीवन समाप्त कर डालते हो फिर भी तुम्हारी आंखे नहीं खुलतीं, तुम उन जन--विरोधी शक्तियों के खिलाफ उठना नहीं चाहते बल्कि उसके कष्ट से सताये जाने पर ईश्वर की पुकार करते हो और उन दुखों को ईश्वरप्रदत्त दुख मानते हो? कभी--कभी जब इन परिस्थितियों से तुम्हें किसी का सहारा मिल जाता है, तुम उसे ईश्वर का सहारा मान लेते हो, लेकिन जब सहारा नहीं मिलता है तब उसे अपना भाग्य समझ लेते हो!'

'आप नास्तिक हैं। मैं आपकी बातों में नहीं आ सकता'—बूढ़ा कहता--कहता चला गया। दार्शनिक अट्टहास कर उठा।

बूढ़ा रोज मन्दिर में आता। देवी को दण्डवत् कर वह पंडित जी से कहने लगता–'महाराज आज भी उसकी दशा सुधरती नहीं दिखाई देती, न जाने ईश्वर को क्या मंजूर है!'

'सब ठीक हो जायगा, आप घबड़ाये नहीं। ग्रहों की शक्ति पूजा पूर्ण होने पर ही तो छिन्न--भिन्न होगी।'

'हे हे हे!' दार्शनिक हंस रहा था। बूढ़ा चला गया।

चार दिनों बाद गंगा के किनारे चिता जल रही थी, पंडित

जी जिसके रोग-निवारणार्थ अभी भी देवी के सन्मुख पूजा में मग्न थे और दार्शनिक बूढ़े के सम्मुख मुस्करा रहा था। बूढ़ा अपने भाग्य पर रो रहा था। लेकिन परंपरा से चले रस्मो-रिवाज पर उसका ध्यान नहीं जाता था। वह ईश्वर को कोस रहा था, लेकिन अपने चारों ओर बिखरी उस शक्ति को नहीं, जो उसे अपने भुजपाश में जकड़-तोड़ रही थी।

देव-मन्दिर

देवश्री नाचते नाचते मूर्छित हो गिर पड़ी। पर देवी प्रसन्न न हो सकी। पुजारी मन्दिर द्वार पर हाथ जोड़े मूर्त्ति की ओर एक टक देखते रह गये। बाहर मन्दिर के विशालकाय प्रांगण में हजारों नागरिकों की भीड़ थी, सभी स्तब्ध हो इस दृश्य को देख रहे थे। लेकिन देवश्री नहीं उठ सकी और फिर पुजारी ने उसका शरीर ढंकते हुए घोषणा की—'देवश्री अब देवी का प्रसाद हो गई। अब इसे मंदिर में छोड़ कर आप लोग जा सकते हैं। देवी ने अगर यह भेंट ग्रहण कर ली तो कल आकाश मार्ग से अन्न और जल की वृद्धि होगी।'

नागरिक उठे। धीरे-धीरे चहलकदमी करते सभी घर पहुँचे। संपूर्ण ग्राम एक मूक वातावरण में परिवर्तित हो गया था। बच्चे रो नहीं सकते थे; मां के स्तन सूखे पडे थे; अब गांव में, आबादी का अल्प भाग ही बच रहा था। दो चार लाशें सूखी नदी के बालुओं पर लेटी दिखाई पड़तीं।

आज फिर देव मंदिर में सुबह नागरिकों की भीड़ लग गई। आशा की एक क्षीण रेखा सबों के चेहरे पर दिखलाई पड़ रही थी। इतने में शंखध्वनि हुई विशालकाय मंदिर का दरवाजा खुला। देवी के सामने देवश्री अब भी मूर्छित अवस्था में पड़ी थी। उसके गोरे-गोरे गाल कुम्हलाये गुलाब से लगते थे। देव मंदिर के उज्ज्वल घृत-दीप में भी उसकी वह विमल कांति धूमिल जान पड़ती थी। सुन्दरी युवती की कंचुकी ढीली दिखाई पड़ रही थी। कल वाला उसका पवित्र परिधान, आज अछूता सा जान पड़ने लगा था। शरीर पर मक्खियां भिनक रही थीं।

नागरिक उस कुमारी को उस अवस्था में देखते रहे कि पुजारी ने एक मोटी आवाज में, गम्भीर होकर घोषणा की—"देवी आज भी न प्रसन्न हो सकीं। अगर आप लोग अन्न और जल की वृष्टि की इच्छा रखते हैं तो कल फिर किसी कुमारी को देवी के चरणों में भेंट स्वरूप उपस्थित करें; अन्यथा तुम नागरिक भूख से तड़प तड़प कर मर जाओगे। इतना कह पुजारी ने प्रसाद के दो चार टुकडों को आंगन में फेंका। नागरिक कुत्तों की तरह उस पर टूट पडे। इतने में मंदिर का दरवाजा बन्द हो गया। दो चार व्यक्तियों ने देवश्री को उठाया और गांव की ओर चले।

लोग आपस में मंत्रणा करते आ रहे थे कि अब किस कुमारी को देवी के भेंट के लिए प्रस्तुत किया जाय। ग्राम की सात कुमारियां देवी को भेंट चढ़ाई गई, जिनमें चार की मृत्यु तो उनकी रात्रि पूजा के दो तीन दिनों बाद हो गई, लेकिन अन्य तीन अभी

रुग्ना अवस्था में पड़ी थीं। उनका चेहरा पीला पड़ गया था; वे अब उठ भी नहीं सकती थीं।

रात्रि ढल रही थी। देवश्री, अपनी माता की एकमात्र संतान, खुले आकाश के नीचे चटाई पर पड़ी कराह रही थी और उसके समीप ही देवश्री का चिर परिचित बाल्य--संगी रवींद्र उसकी सेवा में बैठा था।

अब पंछी चहचहाने वाले ही थे—तारों का पूर्णरूपेण प्रकाश मिट चुका था। लेकिन अभी कुछ अंधेरा था। उसी समय देवश्री ने आंखें खोलीं और संकेतात्मक रूप में रवीन्द्र को बिल्कुल समीप आने को कहा। रवीन्द्र उदास था। देवश्री ने उसके हाथ पकड़ कर अपने कपोल पर दो तीन बार गिराये, फिर बोलने की चेष्टा करने लगी। कुछ क्षण बाद उसके मुंह से शब्द निकले, आंखों से आंसू की अविरल धारा बह निकली—"रवींद्र गुरुदेव ने मेरा सतीत्व......।"

"देवश्री, ..यह मैं क्या सुन रहा हूँ।"..रवीन्द्र तीर की भांति भागा।

सबेरा हो चुका था नागरिकों का उदास मुखड़ा आज फिर देव-मन्दिर में उपस्थित था। "टन-टन-टन" देव-मंदिर में घंटा बजा। मंदिर का दरवाजा खुला। पुजारी ने अपनी दो तीक्ष्ण आंखों से जिनके चारों ओर भस्म और सिन्दूर की रोलियां लगी थीं—नागरिकों को देखते हुए कहा—"क्या भेंट उपस्थित है ?" पुजारी की आवाज शून्य में विलीन हो गई। नागरिक सिर नवाये पश्चाताप में डूबे थे। इतने में एक गंभीर आवाज

सुनाई दी—"देवी अब कुमारियों की नहीं स्वयं पुजारी की भेंट चाहती है।"

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता! कोई धूर्त तुम नागरिकों का सर्वनाश करना चाहता है। कौन है रे पापी? देव मंदिर में यह प्रवंचना!" पुजारी ने क्रोध से कांपते हुए कहा।

इतने में नूपुरों की ध्वनि सुनाई पड़ी—"रुनझुन, रुनझुन" एक लावण्यमयी सुन्दरी युवती देव मंदिर में प्रवेश कर रही थी। उसकी एक एक चाल में कलापूर्ण भावनाएं दृष्टिगोचर हो रही थीं। नागरिक आश्चर्य चकित थे—एक अपरिचित यौवना! लेकिन किसी में दम न था कि इस शंका का समाधान कर सके!

क्षण भर में मंदिर नूपुरों की ध्वनि से गूंजने लगा। देवी के चेहरे पर एक स्वर्गीय आभा दीप्तिमान होने लगी। युवती नृत्य करते करते मूर्छित हो गिर पड़ी। पुजारी ने प्रसाद लुटाये और मंदिर का दरवाजा बन्द कर दिया।

सम्पूर्ण नागरिक मंडली में आज यही चर्चा चल रही थी—'अब शायद देवी प्रसन्न होंगी—वह युवती अवश्य कोई देवी मूर्त्ति सी है।"

आज नागरिकों की उपस्थिति के पूर्व ही मन्दिर में उच्चस्वर से घंटा बज रहा था, शंखध्वनि हो रही थी, एक स्वर्गीय नृत्य हो रहा था। देवश्री और उसकी बूढ़ी माता, देवी के अगल-बगल खड़ी थी! रवीन्द्र नागरिकों का स्वागत करने को प्रस्तुत था और देवी के सामने उस अर्धवयस्क पुजारी की गर्दन कटी पड़ी थी। रवीन्द्र ने उच्च स्वर से घोषणा की—"पुजारी की भेंट

पाकर आज देवी प्रसन्न हैं। आप जितना अन्न चाहें ले सकते हैं।"

रवीन्द्र ने मंदिर का गुप्त दरवाजा खोला, जिसमें वर्षों के हजारों मन अन्न संचित थे। नागरिकों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार अन्न ले जाना प्रारंभ किया। कल तक जो देव मंदिर भयानक जान पड़ता था आज उसकी श्री बढ़ गई थी।

देवश्री और रवीन्द्र आलिंगन पाश में बंधे थे। नागरिक उनके साहस के प्रमाण स्वरूप उनकी मंगल कामना कर रहे थे।

चुन हो

"जेन !. पिस्तौल...!!" तब तक गोली चल चुकी थी। दरवाजे के सामने लगे जेन के एक बड़े फोटो का शीशा चूर-चूर होकर सारे कमरे में बिखर गया।

"यह क्यों ?"—सेनन ने अश्चर्य से अपनी सखी जेन से पूछा।

"कल तक मैं विलास की पुतली बनी हुई थी सेनन, लेकिन आज से मैं एक सिपाही हूँ। देखो उस बच्चे को (खिड़की से झांक कर) गोली लग गई। (चीखती हुई) आह ! उसका भेजा भी निकल गया !"

"सेनन ! अब मैं इस दृश्य को नहीं देख सकती। आज तक मेरी आंखों पर परदा पड़ा हुआ था, लेकिन राष्ट्रकवि चुनहो की गिरफ्तारी ने मेरी आंखें खोल दीं। सुनते हैं अमरीकी फौजें उन्हें घसीटते ले गईं ?"

"जानती हो सेनन ये भूखे भेड़िये क्या चाहते हैं। ये हिंसक

कोरियाई बेटियों को अपने विलास की सामग्री बनाकर एशिया से मानवता के दीपक को बुझा देना चाहते हैं।"

सेनन—"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता, जेन ! जब तक एक एक बूंद रक्त कोरिया के बच्चों में है वह दीपक बुझने नहीं पायेगा, हम अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ेंगे। आज दुनियां के हर राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि वह मानवता के रक्षार्थ लड़े। अगर इस लड़ने से किसी ने इनकार किया तो वह मानव नहीं, दानव है। शांति का दुश्मन है।

कोरिया जिन्दाबाद !—जेन और सेनन एक दूसरे से लिपट गईं।

"'लेफ्ट राइट, लेफ्ट ..लेफ्ट राइट, लेफ्ट।' युनिवर्सिटी की छात्राएं लड़ने जा रही थी। जेन और सेनन भी दस्ते के साथ फ्रंट पर जाने के लिए तैयार थीं। कमान्डर ने बिगुल बजाया फौज चल दी।

"लेफ्ट राइट, लेफ्ट लेफ्ट राइट, लेफ्ट !"

"सेनन, मुझे जीवन में इतना आनन्द कभी नहीं हुआ था जितना आज हो रहा है। जिस गति से हम बढ़ रहे हैं, बहुत जल्द कोरिया आजाद हो जायेगा"—जेन ने आह्लादपूर्ण भाव में सेनन से कहा।

"जेन ! अभी बहस करने का वक्त नहीं, वह देखो दुश्मन इधर ही आते दिखाई दे रहे हैं"—दुश्मन के इन्तजार में जमीन पर लेटी हुई बन्दूक गोली से सजी सेनन ने उत्तर दिया।

* * *

जेन—सेनन, यह वही गांव है, जिसे मैंने छः महीने पहले देखा था। बच्चे इस गांव के सड़कों पर स्वतन्त्र खेला करते थे। लेकिन आज उनकी मधुर मुस्कान दिखलाई नहीं देती, उनकी तुतली बोली आज सुनाई नहीं पड़ती। सड़क के किनारे बछड़े और गायें बंधी रहती थीं, आज उनका नामो-निशान भी नहीं है।

'सेनन! यह खंडहर है, देखती हो! इस स्कूल में छोटे-छोटे बालक-बालिकायें पढ़ा करते थे। लेकिन आज यह कब्र बन गया है—पूंजीपतियों की विनाश लीला का सबूत।"

जेन लम्बी सांस लेती हुई बोली—"सेनन हमारा काम अभी पूरा नहीं हुआ। अभी हम वहां तक नहीं पहुँच सके हैं जो हमारा लक्ष्य था—चुनहो को छुड़ाना।' जहां हमारी फौजें नाकामयाब रह सकती हैं वहां चुनहो की एक आवाज बड़ा से बड़ा काम कर सकती है।"

सेनन कुछ सोचती हुई बोली—"लेकिन जेन, चुनहो को आजाद करने के लिये हजारों बलिदान की आवश्यकता है क्योंकि अमीरीकी फौजें जब जब पीछे हटती हैं बन्दियों को भी वे साथ लेती जाती हैं।"

"हम इसके लिये तैयार हैं ··।"—एक स्वर में ही सैकड़ों कंठों ने उत्तर दिया। सेनन के चेहरे पर मुस्कराहट की लहर दौड़ने लगी और वह भूखी सिंहनी की तरह गरज उठी—"कोरिया जिन्दवाद"! "चुनहो जिन्दावाद!!"

\+ \+ \+

छः घन्टे तक लड़ाई होती रही। विशालकाय अमरीकी फौज का घेरा टूटा लेकिन उसका मूल्य हुआ—'जेन के जीवन का बलिदान।'

हजारों, कोरियाइयों ने जेन को श्रद्धांजलियां अर्पित कीं और चुनहो जेन की अर्थी के साथ गाता जा रहा था···

सिगरेट जल रहा है

हुस्ना के हाथ में ऊन और कांटा था। धीरे-धीरे वह अपने हाथ चला रही थी। सामने उसका पंचवर्षीय बालक रोने की मुद्रा में बोल रहा था — 'दीदी, मुहल्ले के लड़के पूछते हैं कि तुम्हारा बाप कहां है? तुम्हारे बाप का नाम क्या है? और वे बोल-बोल कर हँस दिया करते हैं। मुझे अनाप-शनाप कह कर चिढ़ाते हैं।"

हुस्ना ने हठात इसका कोई उत्तर नहीं दिया लेकिन वह एक बार मुस्कराई—'तुमने क्या कहा बेटा?"

'मैंने कुछ नहीं कहा—हम बाप का नाम नहीं जानते हैं। क्या दीदी हमको भी बाप है? वह कहां है?"

हुस्ना अपने बालक की ओर अब अधिक गौर से देखने लगी जो उसका पुत्र होने पर भी संसर्ग के कारण दीदी कहना सीख गया था। हुस्ना बारबार सोचने लगी—आखिर क्या उत्तर दूँ!! इतने में किसी ने बाहर से पुकारा—"मैं अन्दर आ

सकता हूं ?"

'जरूर-जरूर, आइये।' हुस्ना उठती हुई बोली। उसके हाथ का ऊन और कांटा ताख पर पहुँच चुका था। एकबार वह फिर बालक को देखकर बोल उठी—'यही तुम्हारे पिता हैं बेटा।'—सांवले से अर्धवयस्क पुरुष की ओर इशारा करती हुई हुस्ना ने कहा।

'पिता जी, आपका नाम क्या है ?' बालक ने उत्कण्ठा से पूछा जो अब तक गंभीर ग्लानि में मौन बैठा था। हुस्ना मुस्कराती हुई बोली—'सेठ मुरारी।'

'सेठ मुरारी।' बालक ने दुहराया।

हुस्ना और सेठ दोनों दूसरे कमरे में दाखिल हो चुके थे। एक अच्छी सी गद्दी पर पान की बड़ी-सी तश्तरी, दो-तीन मोटे-मोटे तकिये और नीचे पान उगलने के लिये एक पात्र रखा था। ताखों पर इधर-उधर विचित्र लेबिलों की बोतलें सजी थीं। घंटे भर बाद सेठ मुरारी चला गया। लेकिन वह फिर नहीं लौटा।

बालक कभी-कभी अपने उस पिता के विषय में सोचा करता लेकिन जब उसका वह पिता बहुत दिनों तक नहीं आया तब उसने हठात् अपनी मां से इस सम्बन्ध में कुछ पूछने की जरूरत समझी—उसी दिन संध्या समय एक प्रोफेसर जो बराबर हुस्ना के पास आया करते थे, उसे दिखाकर हुस्ना ने कहा—'यही तुम्हारे पिता हैं।'

कुछ दिनों बाद वह बालक रुआंसा मुंह किये अपनी मां के

पास आ बैठा। सध्या का समय था। मां बनाव-सिगार में संलग्न थी। बालक को उदास देख पूछ बैठी—'क्यों ? क्या हुआ ? ऐसा क्यों है रे, शमी ?'

बालक ने सिसक कर उत्तर दिया—'आज सभी लड़के कहते थे तुम्हारा बाप वह प्रोफेसर नहीं है। अगर वह तुम्हारा बाप रहता तो वह तुम्हारे घर में ही रहता। पर वह तो कहीं और रहता है।'

हुस्ना ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देते हुए कहा—'तुमने उनको कहा नहीं, मेरा बाप नौकरी करता है। इसलिये कभी कभी वह आया करता है।'

बालक खुश होकर चल दिया। लेकिन उसकी खुशी का उमड़ता हुआ सागर क्षण भर में विलीन हो गया। वह धीरे-धीरे झुकता हुआ घर के अन्दर आया। गाल पर तमाचे की चोट से कई रेखाएँ बन गई थीं। आँसुओं की धारा भी निकल-निकल कर सूख रही थी। हुस्ना बालक की यह स्थिति देखकर झपटती हुई बाहर निकली। बालक का दोनों हाथ पकड़ते हुये, पुचकारते हुये वह बोली—'क्या हुआ बेटा शमी ? किसी ने मारा तो नहीं ?' बालक की आँखों से अविरल धारा बह निकली—'मां !'

वह अपनी मां की छाती से लिपट गया और सिसक-सिसक कहने लगा—'लड़के कहते हैं कि तुम वेश्या का लड़का है। वेश्या को भी कोई पति होता है ? तुम्हारा तो सारा शहर बाप है। भले आदमी को तो एक ही बाप होता है। लेकिन तुमको दो बाप है—पहले तो मुरारी सेठ, दूसरे में प्रोफेसर, तीसरे में

और कोई होगा।'

बालक आगे न बोल सका। हुस्ना के हृदय को छेदते हुए ये वाक्य चले गये। वह अन्दर ही अन्दर कराह उठी—'मैं वेश्या हूं। मैं वेश्या…' किसी ने बाहर से पुकारा।

'हुस्ना !'

हुस्ना दरवाजा खोलती हुई सोच रही थी—'आज मैं वेश्या नहीं एक पत्नी बनने की चेष्टा करूंगी। मैं एक वेश्या नहीं, स्त्री हूं, मां।' दरवाजा खुला, कोई प्रवेश कर रहा था। एक दुबला-सा अर्ध वयस्क मानव जो धोती और कुर्ते में लिपटा था। हुस्ना के प्रति उसकी आँखों में हिंसात्मक वासना का तेज था। 'हुस्ना ! आज मैं तुम्हारे यहां बहुत दिनों के बाद आया हूँ।'—कह कर उसने सिगरेट को एक लम्बी कश खींची।

इतना सुन लेने के बाद भी हुस्ना के चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अपने ग्राहक को देख कर पहले उसे जितनी खुशी होती थी, आज नहीं हुई। वह अपने विचारों के आवेश को रोकती हुई बोली—'मैं आज से वेश्या नहीं, एक नारी हूं। पत्नी बनना चाहती हूं ! क्या आप पत्नी के रूप में मुझे ग्रहण करना चाहते हैं ?'

वह मनुष्य ठठाकर हँस पड़ा—'यह कौन सी बला आज तुम्हारे दिमाग में घुस गई है। शायद आज तुमने अधिक पी ली।'

'नहीं आज मैं कुछ भी नहीं पी सकी हूं। यही कारण है कि आज मैं वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर पाती हूं। देख

रहे हो न इस बेटे को, आज वह अपने पिता की याद करता-करता सो गया। उसका पिता कौन है? इस प्रश्न का उत्तर मैं न दे सकी। लेकिन सुबह जब वह इसी प्रश्न का उत्तर मांगने आवेगा तब मैं क्या कहूंगी? क्या तुम मेरी मदद कर सकते हो?"

उस पुरुष की आँखें जो अब तक वासना के सागर में सराबोर थीं, एकाएक बगलें झांकने लगीं। उस कमरे का दरवाजा अब भी खुला था। बाहर की ओर एक बार भयभीत दृष्टि से वह मनुष्य सड़क को देखकर बोल उठा—'लेकिन वेश्या को कौन अपनी पत्नी बना सकता है? तुम्हारे यहां हम दो घूंट शराब पीने और अपनी वासना तृप्त करने आते हैं। लेकिन यह भी जानते हैं कि नारी का असीम स्नेह तुम नहीं दे सकती क्योंकि स्नेह का क्षेत्र विशाल है और तुम्हारा हृदय वासना से संकुचित, रुपये के आधार पर खड़ा स्नेह है।' फिर उसने अपनी उंगलियों में दबे, जलते हुए सिगरेट की ओर इशारा कर कहा—"तुम्हारा मूल्य तो बस इस जलते हुए सिगरेट से कुछ भी अधिक नहीं जिसका अधिक अंश जल जाने के बाद उंगलियों से निकाल कर फेंक दिया जाता है ताकि वह उंगली न जला दे और फिर कस कर उसे जूतों के नीचे दबा दिया जाता है जिससे कि वह सदा के लिये बुझ जाय।'

'तुम अपना शरीर बेचती हो, प्यार नहीं देती। अगर प्यार देती तो वेश्या न होती। क्योंकि प्यार बेचा नहीं जाता, किया जाता है—हो जाता है।'

वह मनुष्य सिगरेट को एक कश लेता हुआ बाहर निकल गया और झटपट अन्धकार में विलीन हो गया। लेकिन उसके जूतों की आवाज अब भी सुनाई पड़ रही थी। हुस्ना के कानों में शब्द बजने लग गये—'प्यार देती तो मैं वेश्या न होती। मेरा मूल्य जले सिगरेट से कुछ भी अधिक नहीं। सिगरेट जूतों के तले दबाकर बुझा दिया जाता है—सदा के लिये!'

पच्चीस वर्षीया युवती हुस्ना का शरीर लाल हो चुका था। काले-काले बालों की लटें उसके मुंह पर लहरा कर अद्भुत सौन्दर्य प्रकट कर रही थीं। बालक के शरीर पर हाथ रखती हुई वह बोल उठी—'' लेकिन मैं बुझूंगी नहीं। सही है, मैंने आज तक किसी को प्यार नहीं किया—अपनी आत्मा का प्यार नहीं दिया। लेकिन अब मैं प्यार करूंगी, प्यार दूँगी। क्योंकि मैं एक स्त्री हूं, मैं भी एक मां हूं। मैं भी मां का स्नेह और पत्नी का प्यार दे सकती हूं—दूँगी।'

सामने दीवाल में लगे शीशे में उसने अपना अपूर्व सौन्दर्य देखा। एकबार वह सजग हो उठी—'आज नौ साल से लोग मुझे प्यार करते आ रहे हैं। कुछ ने अपनी सम्पत्ति का नाश मेरे हुस्न की एक झलकमात्र पाकर कर दी, कुछ ने मेरे गले में मोतियों और सोने के हार पहनाये, तीन-चार ने तो मेरे सौन्दर्य को प्राप्त करने के लिये आत्महत्या कर ली, कुछ ने मुझे पाने के लिये आपस में ही खून खराबियां कर लीं, नोटों के बंडलों से मेरी पूजा की, प्यार की नयी-नयी दुहाइयां दीं, लेकिन मैं···मेरा हृदय न पसीजा और मैं उन्हें ठुकरा देती थी—क्योंकि

उन सब की आँखों में मेरे शरीर के प्रति आकर्षण रहता था। यह कालेज का प्रोफेसर जो मुझे एक लम्बा चौड़ा उपदेश दे गया, अपनी पत्नी का परित्याग कर मेरी शरण आता है, शराब पीता है—भूखों मरता है, लेकिन महीने की पहली तारीख को ही मेरे चरणों में अपनी सारी कमाई भेंट कर देता है। वह जानता है कि मैं एक वेश्या हूं, मैं प्यार नहीं देती फिर भी वह मेरे पास आता है। क्यों ?'

सोचते-सोचते वह थक गई। उसकी कल्पना नाकामयाब होने लग गई। अब वह करे क्या ! वह सोचती आज रात या कल दिन में, मैं या तो आत्महत्या कर लूंगी या किसी की पत्नी बनूंगी। वह एक बार अपने पुत्र को देखती और दूसरी ओर शीशे में अपना चेहरा। हुस्ना इसी उधेड़बुन में थी कि किसी ने कमरे में प्रवेश किया—'मैं अन्दर आ सकता हूँ ?'

एक युवक ने शिष्टता से पूछा। जो मलमल के कुर्ते और एक उजली धोती से सजा था। बांई कलाई पर घड़ी बंधी थी। लेकिन कोई विशेष आकर्षक उसका चेहरा नहीं था, फिर भी वह रईस बनने की कोशिश कर रहा था। युवक ने गद्दी पर बैठते हुये कहा—'मैं एक रात ठहरना चाहता हूं।'

प्रश्न छूटते ही हुस्ना ने उत्तर दिया—'मेरे यहां एक रात के लिये स्थान नहीं, जो सभी रात के लिये मेरा जीवन ग्रहण करे मैं उसी के लिये बनी हूं।'

'मतलब !'

'मतलब यह है कि मैं अपना रोजगार छोड़ना चाहती हूं,

छोड़ चुकी हूं।'

युवक ने अधिक सुनने की चेष्टा नहीं की। वह समझ गया कि हुस्ना को देता आया हूं, शायद आज उतने पैसे से उसे इनकार है। उसे कुछ और चाहिये। लेकिन युवक की पाकिट में इतना था नहीं, इसलिये उसने मोल-तोल करना बेकार समझा और बाहर निकल गया।

अब भी सुबह होने में अधिक देर थी। लेकिन वह अधिक देर ठहरना नहीं चाहती थी, रात भर वह सोयी भी नहीं थी—सुबह उठी, अपने सोते हुये शिशु को एकबार चूमा और चल दी। उसकी भावनाओं में संघर्ष हो रहा था, 'क्या—चल दूँ ? शमी को भी लेती चलूँ ?' लेकिन वह अब विशेष सोचने के पहले ही बाहर निकल गयी। गंगा के किनारे कुछ देर बैठ कर वह फिर बड़बड़ाने लगी 'मुझे समाज ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि मैं वेश्या हूं। समाज का मैं कलंक हूं, कोढ़ हूं। डूब मरना ही अच्छा है।'

वह उठी और गंगा के उस कछार की ओर बढ़ी जो काफी ऊंचा था। जहां से कूदने के बाद किसी की लाश का मिलना कठिन होता था। तब तक सूर्य की प्रथम किरण फैल चुकी थी। गंगा की एक-एक रेखा स्वर्ण निर्मित चादरों की तरह चमचमा रही थी। सभी चीज साफ दिखाई दे रही थी। हुस्ना आगे बढ़ी। सामने से कोई आता दिखाई पड़ रहा था। हुस्ना बड़ी सावधानी से अपने को बचाती आगे बढ़ी। लेकिन वह मनुष्य, जिसके हाथ में एक घड़ी बंधी थी और जिसके सुन्दर बालों

की लटें हवा लगने से लहरा रही थी, एक क्षण रुका और कुछ देखने लगा।

हुस्ना अब किनारे की अन्तिम चोटी पर थी। उसने एक बार मुड़ कर इधर-उधर देखा मानो वह अपनी बीती हुई सारी भूत घटनाओं को एक साथ देख लेना चाह रही थी। युवक ने एक बार में ही उसे पहचाना। लेकिन हुस्ना अब कूदने का उपक्रम करने लग गयी। युवक हुस्ना के करीब पहुंच चुका था। हुस्ना एक बार फिर बड़बड़ा उठी—'नहीं, नहीं, मैं मरूंगी नहीं। मैं समाज का कलंक हूँ। मैं वेश्या हूँ। मेरे लिय डूब मरना ही अच्छा है। क्योंकि मेरे प्रेम पर किसी को विश्वास नहीं। मैं सिगरेट के टुकड़े की तरह जल नहीं सकती।'

युवक चौंका। उसने हुस्ना की दोनों बांहों को पकड़ खींच लिया। वह पीछे उलट गयी—'हुस्ना तुम·· शायद आत्महत्या करने आयी हो। इसलिये कि तुम वेश्या हो। तुम किसी को प्यार नहीं दे सकती तुम पर लोग विश्वास नहीं कर सकते। लेकिन अगर कोई तुम्हें प्यार दे तो···' युवक और हुस्ना की आँखें चार हो रही थीं।

'मैं भी उसे प्यार दूंगी।'—हुस्ना का हृदय आह्लादित हो उठा था। उसकी आँखें युवक की आँखों में समाना चाह रही थीं।

'मैं तुम्हें प्यार दूंगा'। युवक हुस्ना को अपनी बांहों में कस चुका था। हुस्ना ने इसका विरोध नहीं किया। युवक फिर

एकबार दृढ़ हो गया—लेकिन मैं तुम्हें तुम्हारा विलास नहीं दे सकता क्योंकि मैं गरीब हूँ, मिल का एक साधारण किरानी हूं। मेरी हैसियत छोटी है। यही कारण है कि आज तक मैं कुंवारा हूं। तुम तो जानती ही हो कि इसीलिये कभी-कभी तुम्हारे पास दिल बहलाने चला जाया करता हूं। कल शाम भी गया था। लेकिन मुझ में चरित्रहीनता नहीं, केवल वासना को तृप्त करने के लिये ऐसा करना पड़ता है।'

हुस्ना ने एक बार फिर युवक को चूम लिया—"तुमने ठीक कहा अगर मैं किसी को प्यार दे सकती और अगर समाज ने ही मुझे प्यार दिया होता तो मैं वेश्या न होती। किसी ने मुझे प्यार नहीं दिया और न मैं उन्हें प्यार दे सकी। लेकिन आज ·· प्रोफेसर ठीक कहता था।"

हुस्ना और युवक की आँखें अपनी भाषा में मार्मिक बातें कह-सुन रही थीं।

अमीरी का खून

कृष्ण कुमार की कुर्सी की बांहों पर बैठी रमपी मुस्कुरा रही थी। अपनी नुकीली नाक वह कभी उसके बड़े बड़े बालों में डाल देती, कभी कृष्णकुमार की पीठ सहलाने, और कभी कुर्ते का बटन छूने लग जाती।

आज उसकी मुस्कराहट का दिन था। दबी हुई जवानी ने मचलना सीखा था कृष्णकुमार की गोद में ...

× × ×

"देखो आज चार रुपये मिले हैं मुझे।"—रमपी ने मुस्कराते हुए कहा।

"लेकिन ये पैसे तुमने कहां से लाये रमपी!"—एक युवक ने वेदना मिश्रित शब्दों में कहा, जिसके चेहरे पर मिहनत की गहरी छाया दिखलाई पड़ती थी।

"हा हा बुद्धू, जानते नहीं! अपने मिल के मालिक आये हैं बंगले में; उन्होंने दिया है।"

"उन्होंने दिया ? कौन-सा काम कर दिया तुमने उनका ?"

"काम तो वैसे मैंने कुछ नहीं किया। बाबू कह रहे थे—रमपी मैं तुम्हें प्यार करता हूं। इसलिए अब मैं तुझे रोज ५)रुपये दिया करूँगा। तुम मुझसे रोज मिलने आया करो।"

"रमपी, यह क्या कह रही हो। ......प्यार करता है। जानती नहीं, तुमसे मेरी मंगनी हुई है ? क्या इसलिए तुमने ......"

"प्यार करता है तो क्या हुआ ? अगर तुमको यह बुरा लगता है तो. ...अब मैं तुमसे मिलने नहीं आया करूंगी। कृष्णकुमार बाबू कितने अच्छे आदमी हैं।"

रमपी भाग गई मिलान की आंखों से दूर और मिलान एकटक देखता रह गया यह दृश्य। क्या जीवन इसी का नाम है ? दुनियाँ इसे ही कहते हैं ? दो दिनके अंदर रमपी बदल गयी, उसका प्यार बदल गया और तब मिलान ने अपनी धूल धूसरित देह को देख कर एक बार अपने को ललकारा, अपनी मर्यादा को ललकारा; अपने जीवन को ललकारा, जो सो रहा था उसके वक्षस्थल में—"क्या रमपी मेरी नहीं ? कृष्ण कुमार याद रखना, रमपी मेरी है !"

फिर वह आगे बढ़ गया, उस कोठी की ओर—फाटक पर पहुँचते ही दरवान नें गरदन पर हाथ रख कर धकेल दिया—"साला चोर, चोरी करने आया था !"

मिलान लौट गया। उसकी आत्मा ने कराहते हुए कहा—"हाँ, मैं ठीक चोरी करने आया था ! अपनी रमपी की चोरी

करने आया था !" और फिर अन्धेरा हो गया। उसकी आंखों के सामने; उसकी दुनियां में·····

× + ×

आंखें खुली हुई थीं। नींद नहीं आई। सबेरा हुआ और फिर मजदूर चल दिये तराई में काम करने। लेकिन आज मिलान नहीं गया। कल की उसकी मजदूरी ज्यों की त्यों बच रही थी, क्योंकि उसने रात नहीं खाया था, आज सुबह भी वह नहीं खायगा। उसकी नजर सामने वाले सड़क पर गई। रास्ता मुड़ रही थी, रमपी। देखें किधर जाती है वह! अरे वह तो फिर बंगले की ओर चली—"रमपी ! रमपी !! सुन ले रमपी !!! मुझे तुमसे "

रमपी ने उलट कर देखा, लेकिन रुकी नहीं। उसके पांवों में बंधे झुनझुनी वाले कड़े से साफ आवाज अब भी आ रही थी, परन्तु रमपी का दिल······

मिलान अब कौन है ?—एक शोहदा। कृष्णकुमार की नजरों में, इसलिए रमपी की नजरों में भी! क्यों कि वह अक्सर काम से छुट्टी मिलने पर बंगले के सामने चक्कर काटता दिखाई पड़ता है। कृष्णकुमार जब रमपी को कभी-कभी अपनी बांहों में कस लेता है तब बरामदा के नीचे टहलता हुआ मिलान चीख उठता है—"रुपये के लिए रमपी"... ..फिर वह चल देता है।

रमपी का बाप जब मिलान को देखता अपने घर लिवा लाता, चारपाई पर बिठाता, खाने पीने को आग्रह करता,।

रमपी देख लेती एक आंख उसे लेकिन मुस्कराती नहीं पहले की तरह—

एक दिन मिलान रमपी को देख कर कुछ रुका। उसके चेहरे पर उदासी थी, मनहूसियत थी।

उसे देखकर रमपी कुछ हँसी, फिर उसने अपने घाँघरे के कोर से एक चवन्नी निकालकर मिलान की हथेलियों में घुसेड़ दिया और चल दी! मिलान देखता रह गया दो फटी आंखों से। उसे कुछ समझ में नहीं आया ...

रमपी के चेहरे पर अब कुछ रौनक-सी आ गई थी। वह मुस्कराती सहेलियों के संग। उसकी सहेलियां रोज तराई में मोट ढोने, बर्तन मांजने जाया करती, लेकिन रमपी अब वहां नहीं जाती। उसे मालिकों की झिड़कियों के बदले प्यार मिलता। आठ आने मजदूरी की जगह पांच रुपये मिलते। मिल का जमादार अब सूने में उसका हाथ नहीं पकड़ सकता और न उसे घूर घूर कर देखा ही करता। अब रमपी आजाद थी सबकुछ पाकर भी, और उसे आनन्द आता था कृष्णकुमार की छाती से लिपटने में......

बाप तो दिन भर मिल में काम करता, शाम को घर आता। रमपी भी तब तक पहुँच जाया करती, लेकिन अब वह रात को बाप के जगाने पर नहीं जगती, चुप-चाप सोती है; घर मानो सूना लगता उस समय......

एक दिन बाप ने पूछा—"रमपी, मिलान कभी मिलता है या नहीं, मैंने तो उसे महीनों से नहीं देखा?" रमपी ने इसे सुना लेकिन निरुत्तर थी मानों उसने कुछ सुना ही नहीं—

बाप ने फिर दुहराया—"रमपी, अकेला है मिलान: बाप मां है नहीं विचारे को, जरा उसकी खबर तो लिया करो ! कितना सीधा है मुझ अन्धे का सहारा"—

रमपी को यह अच्छा नहीं लगा । उसने देखा कृष्णकुमार की अपार धन राशि, हँसमुख चेहरा और दूसरी तरफ मिलान का सूखा, पीला चेहरा, मनहूस । और उसने पसंद किया कृष्ण कुमार को, शायद जीवन पर्यन्त के लिए ।

लेकिन नादान लड़की जवानी की असारता का मूल्य न जान सकी, भेद न जान सकी ।

वह घर से निकली, फिर बंगले को देखा, और हँस पड़ी—शायद उसने अमरता का रहस्य पा लिया था—कृष्ण कुमार उसका है, उसकी धनराशि उसकी है । वह चलने लग गयी डाक बंगले की ओर—

मिलान आज बहुत दिनों बाद रमपी से मिला । रमपी ने आज भी उसकी ओर नहीं देखा । लेकिन रमपी जब कुछ आगे बढ़ गई, तब मिलान रुका, उसने पीछे फिर कर देखा-फिर पुकारा—"रमपी !" रमपी ने मुड़ कर देखा, ठहर गयी, उसकी आंखों ने पूछा—"क्या कहते हो ?"

"रमपी क्या तुम मुझे भूल गई इतनी जल्दी—क्या वह मंगनी सपना था—झूठा था ?"

"ह: ह: मंगनी, भूल जाव मिलान वह दिन । अब मेरे पास दो पैसे हैं, पहले नहीं थे, इसलिए मंगनी । अब मैं तुम ऐसे भिखारी से शादी नहीं कर सकती । है तुम्हारे पास पैसा ? जाओ जब पैसा होगा तब रमपी से शादी करने की हिम्मत करना ।"

मिलान के भावुक हृदय को चोट लगी। और एकाएक उसका स्वाभिमान जग उठा—"मेरी गरीबी ! तुमने मुझे घृणा का पात्र बना दिया। गरीबी तुमने मेरी आंखों के सामने मेरी आत्मा पर बलात्कार किया ! गरीबी ! क्या तुम मौत नहीं दे सकती ? दे सकती हो, देती हो ! लेकिन नहीं नहीं, मैं मरूंगा नहीं। कृष्णकुमार ! तुम्हारी अमीरी के सीने में छुरे घुसेड़ कर मरूँगा। याद रखना कृष्णकुमार... ..याद रखना ! ."

मिलान चल पड़ा ! कहां ? पता नहीं ! लेकिन अपने गांव से दूर, तराई से दूर।

अब वह मिल में काम नहीं करेगा। वह नौजवान मजदूरों को संगठित कर मिल पर कब्जा करने की कोशिश करेगा। वह अमीरों की विषैली आत्मा पर भी बलात्कार करेगा। फिर रमपी को हासिल करेगा, उसकी जवानी और प्यार को भी ...

× × +

एक साल बीत गया !

"बाबू आज तबियत अच्छी नहीं है। कोई डाक्टर बुला दो !"

"जो कहो मेरी रानी, अभी आया डाक्टर।"

डा० आ गया। कृष्ण कुमार ने अंग्रेजी में डाक्टर से कुछ बातें कीं फिर चारो ओर देखकर डरा, एक चोर की तरह, शायद कोई देख न ले चोरी करते। फिर वह रमपी की देह को हल्के हाथों से सहलाने लगा—"रमपी घबड़ाना नहीं। तुम जल्द अच्छी हो जाओगी। यह दस रुपयों का नोट। अब चली जाव

अपने घर। मैं भी शाम में आऊँगा !"

रमपी ने अपने पीले चेहरे से एक बार कृष्णकुमार की ओर देखा और फिर उठकर चल दी, लेकिन उसके पांव थर थरा रहे थे—वह गिर पड़ी, फिर उठी !

मिलान अब बहुत कम रमपी को देखा करता। लेकिन उसका हृदय एक अतृप्ति, चिन्ता से घिरा हुआ था। थोड़े दिन पहले जब रमपी उसे चाहती थी वह खुश था, नयी नयी शरारतें करता, नये कपड़े अपने खाने के पैसे बचा कर बनवाता, रमपी को भी देता। रमपी जब चाँदनी रात में मिल से लौटने पर उसके साथ होती तब मिलान गाने लग जाता और रमपी हँसने लग जाती, मिलान के बड़े बालों को सहलाने लग जाती। अब मिलान इस स्मृतियों को भी याद रखना नहीं चाहता था।

शाम हो चुकी थी। मजदूर लौट चुके थे। मिलान भी लौट रहा था, लेकिन उसकी चाल मन्द थी, उसके चेहरे पर एक रहस्यात्मक दृश्य था...इतने में उसने आवाज सुनी—"मिलान !"

मिलान ने इधर उधर देखा—एक बूढ़ा हांफता आ रहा है।

"बापू !"—मिलान बूढ़े की ओर दौड़ा। "बेटा, इन दिनों दिखाई नहीं पड़ते, न मिल में मिलते हो, न मेरे घर आते ! एक दिन तुम्हारी झोपड़ी में भी गया था वहां भी पता नहीं। बेटा रमपी से झगड़ आये हो क्या ? उसकी बातों का ख़याल न करना, वह कुछ कह दे तो। बच्ची है न ! दो तीन दिनों से उसकी

तबियत भी अच्छी नहीं, बंगले में भी काम करने नहीं जाती।"

"बापू रमपी की बातों का क्या ख्याल करूँगा, उसकी अपनी हस्ती भी क्या है। लेकिन अब रमपी तो रही नहीं बापू, रुपयों ने उसके दिमाग को जीत लिया है।"

"अरे बेटा यह क्या बोलता है!"

"ठीक ही तो कहता हूँ बापू! हम गरीबों को वह क्यों पूछने लग गई, इसलिये रुपये कमाने की फिक्र में हूँ बापू, ताकि मैं भी वह मिल का मालिक कृष्णकुमार है न, उसके इतना धन जमा कर सकूँ, फिर तो रमपी मेरे पास आपही आयगी।"

बूढ़े ने जीवन के कितने टेढ़े-मेढ़े रास्ते देखे थे लेकिन उसका व्यक्तिगत अनुभव न रहने के कारण वह मिलान के व्यंग्य को पूरी तरह समझ न सका। वह हँसा, क्योंकि वह मिलान को एक बच्चा समझता था और उसके शब्दों को बालकों की तुतली बोली।

"लेकिन बेटा, पैसे तो तब मिलेंगे जब नौकरी करोगे। मिल की नौकरी छोड़ दी तुमने, फिर पैसे कहां से मिलेंगे?"

"बापू तुमने कितने पैसे जमा किये। जिन्दगी तो तुमने उसी कृष्णकुमार बाबू के मिलों में गुजार दी। तुम्हीं न कहते थे कितनी छोटी मिल थी कृष्ण कुमार बाबू की, कितनी छोटी हैसियत के थे उनके बाप दादे और आज वह करोड़ों के महाजन हैं। और बापू तुम—तुम रात दिन खटते हो फिर भी भूखों मरते हो. कृष्णकुमार बंगले में गुलछर्रे उड़ाता फिर भी

भूखों नहीं मरता है। तुम कमा कमा कर उसकी तिजोरियां भरते हो और वह सबों की बहू-बेटियों पर निगाहें डालता है, फिर भी लोग उसे शरीफ कहते हैं।"

"रुपये कमाना तो भाग्य है बेटा और मालिक को बुरा कहना तो पाप है मिलान, पाप!"

"इस पाप की कहानी तो रमपी से पूछना बापू! वह क्यों बीमार है।"

"मिलान!"—बूढ़ा सिख मिलान की बातों को सुनना नहीं चाहता था। दहाड़े उठा। मिलान भागा! उसने एक उहूँ उहूँ की आवाज सुनी, पीछे मुड़ कर देखा—पास की झोपड़ियों से औरतें रमपी की झोपड़ी में जा रही थीं। लेकिन वह ठहरा नहीं—

संध्या समय कृष्ण कुमार को एक पत्र मिला—"कृष्णकुमार सावधान!" कृष्णकुमार चीखा, और दो विपत्तियों को मुँह बाये देख वह तिलमिला उठा। फिर उसने इधर देख कर ओवरकोट धीरे से पहना और नौकर से कुछ कहा।

गाड़ी चल दी—नीची पहाड़ी ढ़ाल पर चलने में गाड़ी को आसानी हो रही थी! खड़खड़ाती गाड़ी आगे बढ़ गई और उसके साथ ही उस मोड़ के सामने जब गाड़ी कुछ धीमी हो गई तो कृष्णकुमार के कानों में पास वाली झोपड़ी से एक 'ऊहूँ, ऊहूँ' की आवाज सुनाई दी और एक कराह—"बापू! मिलान!"

गाड़ी बढ़ चुकी थी। एकाएक कृष्णकुमार के चेहरे पर टॉर्च की रोशनी पड़ी, वह सजग हो गया। अपने बंदूक को उसने

संभाला फिर पिस्तौल की ओर देखा और फिर देखा बंगला की ओर, उस आवाज की ओर—'ऊहूँ ऊहूँ'!

कृष्णकुमार ने फिर कर आगे सड़क की ओर देखा और सुना—"अमीरी के सीने में छुरी घुसेड़ दो!"

भयंकर आवाज! गाड़ी घिर गई। घोड़ा आगे नहीं बढ़ता था। कृष्ण कुमार ने सामने देखा—रमपी के गोद में नवजात शिशु और रमपी कह रही है—"कृष्णकुमार यही तुम्हारा प्यार है। धोखेबाज अमीर जवानी के लिए प्यार करते थे और उसे लूटते थे रुपयों से, मुस्कराते थे मेरी जिन्दगी बरबाद करने! तुम्हारा मुस्कराना विष है समाज के लिए!"

और उसने देखा उस मजदूर को, जिसके गले पर उसके दरवान ने हाथ डाल कर बाहर ढकेल दिया था।

वह चीख पड़ा—"मुझे माफ कर दो! मुझे जाने दो।"

"लेकिन अमीर जाओगे कहां? तुम्हारे मिल पर तो मजदूरों का अधिकार हो गया।"-मिलान बोलता हुआ मुस्कराया!

कृष्णकुमार गाड़ी से गिरा। पहाड़ से टकरा कर उसका सिर चूर हो गया। खून से लथपथ आंखें एक बार फिर खुलीं और सदा के लिये बंद हो गईं। अमीरी का खून हो गया!

मिलान रमपी को संभाले था और नवजात शिशु था उसकी गोद में—

भेल साओन मास

कोशी की विभीषिका का दृश्य अब भी ताजा है। वह इसलिए ताजा नहीं कि वह घटना बहुत हाल की है। बल्कि इसलिए कि उसके साथ असंख्य निरीह जीवन का संबंध है। हम अपने गांव से नाव पर कोशी यात्रा को निकले। लेकिन राह में क्या क्या देखा इसका जिक्र तो बाद में करूंगा, अभी वह कहानी ही रख दूं जो शीघ्र कागज पर उतरने के लिए बेताब हो रही है।

यात्रा की प्रथम रात हमने एक गांव में बिताई। जमीन सूखी थी, किन्तु उसके पूर्व दिशा की ओर बहने वाली नदी में पानी लबलबा रहा था, मानो दूध उफनाना चाह रहा हो। शाम में हमने (मैं और मेरे दोस्त काबरा ने) एक कलाकार का आतिथ्य ग्रहण किया। यों तो गांव के लोग इसे कलाकार नहीं मानते, लेकिन मैं उसे कलाकार ही कहना अधिक पसन्द करूँगा। करूं भी क्यों नहीं। मिट्टी की मूर्त्तियां बनाया करता था वह, बड़ी प्यारी और मासूम। मैंने संध्या के धूमिल प्रकाश में कुछ के

नमूने देखे थे। एक छोटा मचान और उस पर टेढ़ो सीधी मूर्त्तियाँ पड़ी थीं। कुछ पर तो अभी रंग नहीं चढ़ पाया था, कुछ तो पिछले दिनों ही पकाई गई थीं। और कुछ अभी गीली थीं। किन्तु उनमें से अधिकांश मूर्त्तियाँ छोटी और सजीव जान पड़ती थीं।

काबरा थक गया था। वह मिट्टी के एक लोंदे के सहारे लेट गया। मैं भी चुपचाप वहीं बैठकर फूस की टाट के छिद्र से पुनः मूर्त्तियों के सौन्दर्य को देखने लगा। इतने में कोई आया सामने एक नौजवान था। गठीला बदन, और मस्ती भी थी शायद। आते ही कहा—"बाबू जी, गांव चारों ओर पानी से भरा है, भयानक काला ज्वर हो रहा है। कहां आये हो जान देने ?"

मैं इन बातों को सुनकर उसे देखता ही रह गया, बड़े गौर से देखता रहा, लेकिन सहसा उत्तर न दे सका और केवल उसकी बातें सुनकर सोचने लगा—"और तुम क्यों जान दे रहे हो इस टापू में पड़े पड़े! तुम्हारे शरीर से मेरा शरीर क्या अधिक कीमती है ? क्या मेरी हड्डियों से हीरे और जवाहिरात बनेंगे जो इन्हें इस भीषण कोशी की बाढ़ में बह जाने न दूं ?"

लेकिन काबरा कब अपने को रोक सकता था, बोल उठा "भई हमें भूख लगी है, भूख—बस नाव पर बैठते बैठते तो कचूमर निकल गया है। कुछ खिलाओ, पिलाओ फिर पूछ लेना हम क्यों आये हैं। इसका यह मतलब नहीं कि हम तुम्हें अपना पता ठिकाना बताने से इन्कार कर रहे हैं. बतायेंगे जरूर हम

चोर उचक्के नहीं,भले आदमी हैं। वैसे लिबास से तो तुमने जान ही लिया होगा।"

इतने में झमक झमक की आवाज आयी और मैंने देखा एक मूर्ति मेरे सामने खड़ी है। शायद उसी मिट्टी की सी मूर्ति।

लेकिन यह बोलती भी है—"अहां सब हाकिम थिकियैं कि बाबू? कि खैरात बटवैय?"

"क्या बाटूँगा?"—काबरा ने मुँह बनाकर मेरी ओर देखा। शायद उत्तर देने को कह रहा था। "हम अफसर नहीं, घुम्मकड़ हैं भाई। बस एक नाव मिल गई है, घूम रहे हैं।" मैंने नम्रता से कहा।

कलाकार ने अब कहा—"चान (चाँद) हिनका सबकए किछु खुएबियोन्ह तखन न।"

'चांद' हां उस लड़की का ही नाम था चांद, इतना सुन कलाकार की ओर लपकी और उसकी बांह पकड़ खींचती हुई उस घर में ले गई, जहां की मूर्तियां अब भी कुछ कुछ हमें दिखाई पड़ रही थीं।

फिर हमने सुना—"हुकुम तऽ कए देलिए परन्तु खुए-बैन्हिकी? मरकर! रेशन जे हाकिम दए गेल छलाह सए तं खतम भइ गेल। थोड़ेकटा जनेरक लाबा बांचल अछि से हो रातुक खेबाकए हेतु।"

कलाकार का चेहरा चमक उठा—"चाँद वैह लाउ। पाहुन कि नई जानैत छथि कि हम सब केहन दुख मे छी। जनेर दहाय गेल अछि लाबा त भेटतए नहिं अछि, धान से हो नहिं होयत।"

चाँद मटके को खड़खड़ाने लग गई। कलाकार एक कपड़े में कुछ भूजा लिये हुए हमारे सामने उपस्थित था। काबरा ने झट अपने दोनों हाथ कपड़े में डाल दिये। मैंने भी हाथ बढ़ाया।

लेकिन काबरा के बार बार पानी मांगने पर भी कलाकार ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपनी झोपडी में घुसा। दार्शनिक दृष्टि से मूर्त्तियों को केवल निहार रहा था। काबरा अब चिल्लाया। चाँद आई। काबरा ने पुनः तनकर पूछा। जवाब मिला गांव में जिधर कुआं है उधर हैजा हो रहा है, पानी तो बस नदी में चलकर ही पीना होगा। और वह भी किनारे का पानी नहीं, बीच नदी का पानी। क्यों कि अधजली लाशें किनारे में फेंक दी जाती हैं, बहा दी जाती हैं। लकड़ियां तो मिलती नहीं! दो चार जो वृक्ष हैं, आधे आधे पानी में डूब चुके है। उन्हें काटना भी आसान नहीं! हम फांकते हुए नाव की ओर चले। देखता हूं, चाँद का कथन साकार हो उठा! हमारी नाव का सूखा किनारा पानी से भर गया है और उससे लगी दो तीन इंसान की लाशें हमारी ओर देख रही हैं।

नाव को धीरे से खिसका कर हमने धार में डाल दिया। हमारी चेतना शिथिल सी हो गई थी। लगता था हम इंसान की छाती पर तैर रहे हैं। जब धीरे धीरे कोलाहल सुनाई पड़ने लगा तब देखा कि हमारी नाव बहुत दूर कहीं जा चुकी है, जा रही है। और नाव के साथ कितनी चीजें उभचुभ करती बढ़ती जा रही थीं। छप्पर के दो बड़े बड़े टुकड़े हमारे सामने से

गुजरे। और इसपर शायद कोई "कांय कांय" कर रहा था। काबरा ने हाथ बढ़ा दिया—एक छोटा सा इंसान का बच्चा काँय काँय कर रहा था।

काबरा ने उसे कंधे पर डालते हुए कहना प्रारंभ किया—"बदनसीव देश का बालक! दुनियाँ में तुम्हें कोई और जगह रहने को नहीं मिली जो इस कोशी की गोद में जन्म लिया।" काबरा दार्शनिक बन गया था। दार्शनिक कहते हैं कि साधारण झोपड़ी में रहने में अधिक आनन्द है। लेकिन अगर उन्हें इन झोपड़ियों में रहना पड़े तो शायद एक नये दर्शन का निर्माण करने लग जांय। उनके सभी आज तक के सिद्धान्त उसी आधार पर बदल जांय। दर्शन का नव निर्माण हो।"

सूरज डूबने लग गया था। नदी की तेज धारा पर तैरती नाव हमारी बात नहीं सुन रही थी। हमने पतवार रख दी थी। नाव अब उस टीले पर लग चुकी थी, जहां कलाकार न था, चाँद न थी। हम थे और थी शायद समूची गांव की आबादी। हमने बड़े गौर से देखा छोटे छोटे बच्चे, सयाने, बूढ़ी, जवान औरतें। लेकिन वे ऐसे घिरे एवं सशंकित थे मानो कोई उनका शिकार खेलना चाह रहा है। हाँ, सशंकित तो उन्हें रहना ही चाहिए, प्रकृति और मनुष्य जो उनका शिकार खेलना चाह रहे हैं।

इतने में हमने देखा एक आदमी हमारी ओर बढ़ रहा है। पता चला यह महाशय कोई मैजिस्ट्रेट हैं, राशन बांटने वाला हाकिम। शायद चांद इसी के विषय में कह रही थी।

आबाद टीले पर हम भी शरणार्थी बनने चले। लेकिन जब टीले के मध्य पहुँचा तो देखा सभी लोग, (स्त्री-पुरुष) एक गुल्म सा बनाये एक दूसरे से लिपट रहे हैं या एक दूसरे से छीना झपटी कर रहे हैं। छोटे छोटे फूस के घरों से कराहने की आवाज आ रही थी। देखते देखते एक मिट्टी की दीवार दो को दाबती हुई टूट गई। और उधर लोगों का कोलाहल बढ़ रहा था-कभी कभी एक झोंका सा लगता,वे पीछे हटते, फिर एक में मिलकर गोल हो जाते। फिर वही क्रम। काबरा के जिज्ञासा प्रकट करने पर हाकिम ने बतलाया कि लोग राशन और कपड़े के लिए उलझ रहे हैं। काबरा यह सुन कुछ आलोचना करना चाह रहा था—किन्तु उसकी जबान मैंने बंद कर दी। टीलों के एक किनारे देखा दो जवान लड़कियां नंगी अवस्था में हैं, एक बुढ़िया तो बिल्कुल नंगी ही पानी के किनारे, बैठी खांस रही थी। दो एक को छोड़ कर बांकी सभी लोग लंगोटी लगाये थे, मर्दों ने अपने अपने कपड़े स्त्रियों को दे डाला था। किन्तु जब राशन की बात आई तो कौन किसको पूछे, सभी अपना देख रहे थे। भूख तो सबको समान रूप से ही लगती है न। उस छीना झपटी में पुरुष बाजी मार लेते और स्त्रियाँ उनकी ओर बड़ी सतृष्ण आंखों से देखती रह जातीं। ऐसा दृश्य देखकर काबरा ने कई बार मुझे उस आदिम युग की याद दिलाई जब पुरुष मृगया करता था और स्त्री उसकी ओर मृगया के लिए ही झुकती थी। यही उनको और भोजन का साधन भी था।

उस बच्चे को किसी अज्ञात मां के हवाले कर हम सिमसिमायी जमीन पर बैठ गये। अफसर ने बड़ी दया कर हमारी ओर कुछ रोटियां भेजीं जो कई रोज की बासी बन चुकी थीं। अब हम कलाकार के पास तो नहीं, कहीं और रात काटने का ठिकाना खोजने लगे। अफसर ने हमें साथ चलने का अनुरोध किया।

हम चले। रास्ते में एक बड़ा खूबसूरत बैलों का जोड़ा बहा जा रहा था। काबरा कुछ बोला। अफसर ने उत्तर दिया—जनाब अभी तो आपने यह खूबसूरत बैल का जोड़ा भंसते हुए देखा, इससे भी अधिक कितनी कीमती वस्तुएँ बह जाया करती हैं। अगर सबों को हम निकालने लग जांय तो बस हमारा काम हुआ। काबरा झगड़ता लेकिन मैंने पुनः रोका। तब तक कलाकार का टीला पहुंच चुका था। अफसर की मोटर-नाव हमें छोड़ कर चली गयी। एक छोटे टीले पर हम अपनी नाव छोड़ एक सोता पार किया और कलाकार की ओर बढ़े। दूर से ही कलाकार की आवाज सुनाई पड़ी, शायद वह चाँद से उलझ रहा था। काबरा ने तब तक मेरी बांह पकड़ी और रोक लिया—"जरा सुनो तो इन्हें"। आवाज आ रही थी—"दूइटा पाहुन छथि किछु नीक भोजन खुएबाक चाही। मूरती नहिं बिकाइछ त हमर कि दोस। किए नई अपन भाग कए ठोकइत छ, किए नई कोशी मेए कए कहएछ कि—मेए आब घोल जा नई त ककरो नाह भंसाकए द जा जैपर चढ़ि कए तू मूरती बेचने घुरबो।"

"मुदा एहि बाढ़ि में केए मूरती कीनत ? लोक कए त अपनं जान जान पर भ रहल छए। कैनचा से हो लोक कए नहिए छैक। भोला से हो उधार भरिसक नहिए देत, आर फेर उम्हर जेबो के करत। उम्हर बिगैड़ गेल छए (हैजा होता है)। जं संयोग सं पाहुन कए किछु भए जएतन्हि तं कहताह कि येह डेनियां कए देलक, हम...... ।"

कलाकार असहाय था। न जाने क्या सोचकर हम भी उसकी ओर चल दिये ? काबरा ने पहुंचते ही कहा—"भाई, एक बात कह दूँ, हमें खाना पीना नहीं !" अब उसकी आंखें चाँद की ओर फिरीं--"तुम्हारे गांव में हैजा हो रहा है न। दिन रहता तो हम लोग अभी चलता हो जाते लेकिन रात है, कैसे चलें ! अब सिर्फ सोऊँगा और सुबह अपनी नाव चल देगी।" लगा कि चांद के माथे का बोझ हलका हो गया। काबरा ने पुनः कहना प्रारंभ कर दिया और उन सारी घटनाओं को दुहराने लग गया, जिसका अभी अभी उसे अनुभव हुआ था। ऊपर चांद देख रहा था—हम सबों को। चांद का श्यामल शरीर खूबसूरत और लावण्यमय। कलाकार अनमना सा आसमान की ओर देख रहा था, मानो चाँदनी का दायरा नाप रहा हो। और आसमान के नीचे दूर दूर फैली अधडूबी बस्तियां, पानी का पारावार नहीं और उस पर चाँदनी ऐसी छिटकी हुई मानो चाँदी पिटी हो। कहीं कहीं से कुल-कुल कल-कल की आवाज आ रही थी। मेढ़क भी बोल रहे थे। किन्तु वातावरण अत्यन्त शान्त था। हवा रुकी पड़ी थी। उमस बढ़ रही थी।

पानी का चढ़ाव भी तीव्रतर था, लेकिन नाव को हम लापरवाही से छोड़ आये थे। छोटे छोटे बादलों के टुकड़े आसमान में रुके पड़े थे, मानों वे किसी वृक्ष से लगकर अटक गये हों।

काबरा किस्सा समाप्त कर रुखड़ी जमीन पर ही बिस्तर लगाने लग गया। लेकिन कलाकार ने बड़ी सहृदयता से उसे रोककर कहा—"बाबू इस मचान पर आ जाओ समय खराब है।"

"लेकिन दोस्त हमें उस पर नींद नहीं आयगी और समय …हैजा से डरते हो। हैजा का भेद मुझे मालूम है। मैं तो खुद भई डाक्टरी पढ़ चुका हूं कुछ कुछ, अफसोस अगर पैसे ने साथ दिया होता तो आज नालायक पत्रकार होने के बदले कहीं का सर्जन रहता।"

मैंने भी काबरा को रोकना चाहा। तब तक चाँद टूटी-फूटी हिन्दी में बोल उठी—"बाबू जी, चारो कात पैन भर गया है। पैंघ पैंघ बिषधर घूरैंत रहता है। ओकर कि ठिकान है?"

काबरा हँसना चाहता था। कुछ बोल न सका। बिस्तर उठाकर मचान पर डालने लग गया।

हम अब सोने लग गये थे। कलाकार अन्दर झोपड़ी में चला। शायद एक ही मचान पर उन दोनों ने भी बिस्तर डाल दिया था। मूर्त्तियां नीचे पड़ी थीं। कुछ कच्ची दो घड़े में डाल दी गई थीं। ऊपर छप्पर के नुचे हुए स्थान से चाँदनी का प्रकाश उन दोनों पर पड़ रहा था। और हम उन्हें साफ देख रहे थे। काबरा तो न जाने कब तक उन्हें देखता ही रहा।

मैं अब सोने लग गया था। उसी समय कुछ गेय पंक्तियां सुनाई पड़ीं। पता चला 'विद्यापति' के गीत थे—

"के पतिया लए जाएत रे
मोरा प्रियतम पास।
हिय नहिं सहए असह दुख रे
भेल साओन मास ॥"

चारों ओर पानी से घिरा घर और बीच में 'विद्यापति' की कविता। यह क्या है? कलाकार ने बताया—'मधुश्रावणी है बाबू।'

मधुर पंक्तियां सुनते सुनते हम सो गये।

अकस्मात जब नींद टूटी तब चीखती आवाज सुनाई दे रही थी। भयंकर कोलाहल। मेरी आंखें खुलीं—चाँद कलाकार का शरीर झकझोर रही थी—"सुनिऔ औ, कि अवय छय। उडनी जहाज जोंका लगए छैक।" अब उसने कलाकार को आधा उठा लिया था। मचान पर वह बैठा ही था कि चेतना जगी, आँखें खुलीं, शब्द निकले—'बाढ़ि, चान पड़ा (भाग)।"

तब तक चाँद कलाकार को खींचती हुई बाहर आई। कलाकार बोल उठा—"बाढ़ आ गई बाबू चेतो।"

काबरा जाग चुका था। संभलकर उठा और नाव की ओर बढ़ने लगा—"हमारी नाव बह जायगी, टीले पर बंधी है।"

कलाकार ने रोका—"बाबू मैं जाता हूं। तुम्हें कोशी का हाल मालूम नहीं, तुम ठहरो।" दो कदम आगे कलाकार बढ़ा ही था कि पानी का एक भयंकर झोंका उसे लगा। वह कुछ पीछे

फेंका गया, पर पुनः आगे बढ़ा। और हम मचान पर कमर भर पानी में खड़े थे। काबरा ने झटपट चाँद को अपने पास खींच लिया। हम तीनों अब देख रहे थे कि कलाकार टीले के पास कठिन धार में है। टीला का थोड़ा सा अंश डूबने से बच रहा था और नाव ठीक ठीक दिखाई नहीं दे रही थी।

कलाकार टीले पर पहुँच कर इधर उधर फिरा पुनः हमारी ओर मुड़कर कुछ बोलना चाह रहा था। किन्तु उसकी आवाज एक चीख में बदल गई—"आह !"

"कि भेल औ ?" चाँद हठात बोल उठी ! "कलाकार" ! काबरा भी गरज उठा "मैं आऊँ क्या ? क्या कुछ हुआ ? नाव मिली ?"

हमने देखा। कलाकार भरते जा रहे टीले पर बैठ रहा है। लेकिन क्यों ? शायद उसकी मुखमुद्रा देखकर कुछ जान पाता। किन्तु वह—उसकी छाया ही केवल स्पष्ट थी—काली छाया।

कलाकार ने शायद कुछ क्षण बाद उत्तर दिया था—"नाव भी नहीं मिली और न कलाकार मिल सकेगा।"

हमने देखा। आवाज कानों में आई और झप से कोई चीज पानी में चीखती हुई गिरी—"हाय, भाग, बिषधर डँसिये लेल।"

पुनः टीले से आवाज आई—"धार तेज है चांद, टीले पर न आना। मैं अब नहीं रहूंगा।"

मैंनें बरबस काबरा को जकड़ लिया। काबरा अपना शरीर खींच रहा था पानी में कूदने। मेरी आँखें टीले की ओर

लगी थीं—देखा चाँद उभचुभ कर रही है ।

"बुजदिल" काबरा एक कड़ा झटका देकर निकलना चाह रहा था । मैं कड़ा होकर बोल उठा—"जाओगे ? है हिम्मत कोशी की धारा में तैरने की !"

काबरा हिला । मेरी आँखें पुनः टीले की ओर मुड़ीं । टीला भर गया था ।

चाँदनी छिटकी हुई थी । काबरा मुझे बांहों में कसकर फूट-फूट कर रो पड़ा—

"हिय नहीं सहए असह दुख रे
भेल साओन मास ।"

इंसान की लाश

"आज की दुनियां बस इन्सान की लाशों से ही तो भरी है। आज कोई भी जीता जागता इन्सान नहीं है। भूख, बेकारी, बीमारी, अशिक्षा, अन्याय, धोखेबाजी यही तो आज दुनियां में बच रहे हैं। आज इन्सान का सही रूप रहा कहां? वह तो संसार के विशाल जनरव में खो-सा गया है। उस सही इन्सान की केवल लाश बच रही है, नन्दू, केवल लाश! वह यातनाएं सहता, मेरी तरह आज का इन्सान अत्याचार और जुल्म का शिकार होता है लेकिन उसकी आत्मा, इसके विरुद्ध विद्रोह नहीं करती। क्यों? नन्दू क्यों? तुम तो एक पत्रकार हो, तुम बतला सकते हो, क्यों?" आवाज कुछ क्षण रुकी और पुनः भिन्न स्वर में तीव्र हो उठी।

"क्योंकि उसके सीने में दम नहीं, वह मर चुका है। इन्सान की लाश से आज जमीन पट चुकी है। इन्सान अगर जिन्दा रहता तो फिर इन कुरीतियों का वह शिकार नहीं होता।

इन्सान जिस किसी भी मुल्क में जिन्दा रहा है, उसने अन्याय के खिलाफ आवाज उठायी है, सब दिन आवाज उठायी है, और एक दिन अत्याचार पर विजय भी प्राप्त किया है।"

एक गोरा, दुबला-सा नौजवान आवेश में आकर बोलता जा रहा था। मैला सा पतलून, एक साधारण हाफ कमीज, उंगलियों में दबी एक रूमाल और घिसा हुआ काबुली जूता, बस यही उसकी वेश-भूषा थी। बाल इधर-उधर बिखरे थे मानो वह अधिक व्यस्त हो। आंखें छोटी, परन्तु बड़ी चमकीली थीं, जो अधिक गहराई में छिपी रहने के कारण भी अपना महत्व खो नहीं रही थीं।

उसके सामने ही कुर्सी पर बैठा उसका मित्र नन्दू उसके प्रश्नों का उत्तर भी देता जाता था जो मस्त तो अधिक था लेकिन आर्थिक कठिनाइयों से महीने भर व्यस्त रहता था। परिवार में केवल एक बूढ़ी माँ थी, जिसका भार वहन करना भी उसे भारी लग रहा था। लगे भी क्यों न, सब दिन वह बेकार रहा। किसी प्रेस में मुश्किल से छः आठ महीनों के लिए नौकरी मिल जाती है, कुछ दिनों बाद प्रेस बंद हो जाने पर या अखबार में घाटा लग जाने पर अथवा नौकरी से मुअत्तल हो जाने पर दूसरे प्रेस का मुँह जोहना पड़ता है। नौकरी की इस अवधि में उसे कई महीने बेकारी का भी सामना करना पड़ता है। बेकारी की अवस्था में अखबारों में कभी-कभी कहानी, कविता, लेख भी लिखा करता। जिसके पैसे सम्पादकों की बड़ी खुशामद के बाद वसूल कर सकता है।

राजिव अपनी शान्ति का केन्द्रस्थल नन्दू को बनाये हुए है। और है भी वह इसी के काबिल।

राजिव एक सेठ का नौकर है। उसे भी अपने परिवार को चलाने की फिक्र रहती है। गत कई महीनों से उसका परिवार अधिक दुखमय जीवन बिता रहा है। बीबी बीमार है, बच्चे बीमार हैं, मां मरने की दशा में है, पिता दम्मा के रोगी हैं और आप चिन्ता से जर्जरित रहकर भी सेठ का हुक्म बजाता है। वह अपने परिवार वालों की पूरी सेवा न तो पैसे और न शरीर से ही कर पाता है इसी का उसे अधिक क्षोभ है। आज वह अपने को रोक न सका और बरस ही तो पड़ा।

नित्य शाम में चाय की छोटी सी दूकान के किसी कोने में बैठकर दोनों अपने-अपने दिलों का हाल एक दूसरों को सुनाते हैं।

आज भी राजिव अपने दिल का हाल ही सुना रहा था। नन्दू राजिव की दार्शनिक उक्तियाँ सुनकर चौंक-चौंक जाता था—"लेकिन राजिव आज कोई नई घटना हो गई क्या? तुम अधिक व्यग्र दिखाई दे रहे हो। मालिक से....... ."

"नहीं नन्दू! मालिक से क्या........उसका भी क्या दोष? वह विचारा तो परंपरा का पालन कर रहा है। अब सहा नहीं जाता, लगता है कि आत्महत्या कर लूं, परन्तु इन बाल-बच्चों का ख्याल कर रुक जाता हूँ।"

इतने में बैरा ने पुकारा—

" शाब चाय

नन्दू और राजिव चाय पीने लग गये। छोटे से होटल के एक कोने में दोनो मित्र जमे थे। यह कोई अच्छा होटल नहीं था। अक्सर रिक्से वाले, टमटम वाले ही यहां आया करते। मेज और कुर्सियों पर परत की परत धूल जम गई थी। अन्य दो एक कुर्सियों पर भी बसकंडक्टर और ड्राइवर इत्यादि भी चाय की चुस्कियाँ ले रहे थे। लेकिन उन सबों का चेहरा भी बिलकुल शुष्क जान पड़ता था, जैसे मुरझाया पौधा। कोई खुशी नहीं, कोई आशा नहीं, निराशा का अभेद्य साम्राज्य चेहरे पर फैला नजर आता था।

नन्दू और राजिव चाय पीने लग गये। नन्दू एकटक राजिव को देख रहा था। राजिव के उदास चेहरे पर उसे संसार की महान प्रतिभाएँ दिखाई दे रहीं थी। अस्तव्यस्त समाज का नग्न चित्र, सिनेमा के चित्रों की तरह दौड़ता हुआ, नन्दू राजिव के चेहरे पर देख रहा था।

चाय समाप्त हो गयी। राजिव और नन्दू दोनों टेबिल से उठ चुके थे। होटल के गेट पर होटल मालिक को संबोधन कर नन्दू ने कहा—"सिंह साहब मेरे नाम लिख लीजिएगा।"

"क्या तेरे नाम लिख लूँ, आज महीने हो गये-बिल नहीं चुकता है।" सिंह के शब्दों में व्यंग्य था।

राजिव और नन्दू दोनों ने सुना। लेकिन वह इंसान अभी खून और मांस का इंसान नहीं था। उसके जिस्म में पानी भरा था।

दोनों आगे बढ़ गये। कठोर पत्थर पर बार बार ठोकर लगने के बाद ही उसकी गर्मी से अकस्मात् चिनगारी निकल जाती है। चिनगारी निकलती तो है लेकिन वह भी क्षणिक होती है। बस इनका भी वही हाल था।

नन्दू और राजिव मौन बढ़ रहे थे। आगे लम्बा चौड़ा रास्ता था, विचित्रताएँ थीं, उसके साथ--साथ बहुत से इंसान के रूप भी थे जो आगे बढ़ रहे थे।

चौराहे के सामने पहुंच कर नन्दू ने मौन भंग किया—"राजिव इस सड़क से नहीं, हम जरा गलत चले आये।"

"हाँ भाई कहते तो ठीक हो! मुंशी के बिल तो तुमने भी नहीं चुकाये। चलो झटपट छोटी गली में घुस जायें।"

बिजली की चकाचौंध से चिर अंधकार में नन्दू और राजिव का काफिला पहुंचा जहां की मिट्टी शायद अपराधियों को अपने सीने पर ढोती है, जहां का अंधकार उनके चेहरे की रक्षा करता है। स्ट्रीट लैम्प भी एक तरह से बुझ ही चुका था। कहीं-कहीं नाले के किनारे से भुक भुक रोशनी दिखाई दे रही थी।

सेठों के मकान का अधिकांश पिछला भाग इसी छोटी गली में निकला करता है, जहां सुबह मेहतर ही अक्सर आया करते हैं। गली के उस पार कुछ किरानी, और कम वेतन प्राप्त मध्य-वर्गीय लोग रहते हैं। कुछ टमटम और इक्के वाले अपनी अपनी झोपड़ी में शाम होते ही नशे में चूर, शोर-गुल मचाना शुरू कर देते हैं। इन गरीबों की ही जमीन इस मुहल्ले में इधर उधर बिखरी हुई थी जिसका अधिकांश भाग अब सेठ लोग खरीद

चुके हैं और धीरे धीरे बचा खुचा भाग भी हर साल वे लोग खरीदते जा रहे हैं। क्योंकि इन गरीबों की किस्मत पर बराबर आसमान में रहने वालों फरिश्तों का कोप होता है जिनकी दया से उनके दूत उन गरीबों पर कृपा दृष्टि दिखलाते हैं।

नन्दू और राजिव एक बड़े नाले के पास रुक गये जिसमें बरसात का काफी पानी जम चुका था और उस पर मच्छड़ अंडे भी देने लग गये थे। नन्दू ने दो मिनट इधर उधर झांका फिर राजिव के कंधे पर हाथ रख कहा—"जरा घूम कर चलो नाले का पानी सड़क पर आ गया है। साले म्युनिसपेलटी वाले भी तो जानते ही हैं कि इस गली में भूखे नंगे रहते हैं उन्हें क्या जरूरत अच्छे रोड से; किसी तरह जीयेंगे ही।"

इतना कह कर नन्दू और राजिव दोनों गली के छोर पर आ गये, जहां से दो गली पूरब और उत्तर की ओर जाती थी। उत्तर गली के ठीक मोड़ पर ही नन्दू और राजिव एक कच्चे मकान में रहते थे।

दूर से ही आवाज सुनाई दी। शायद कोई अनाप-शनाप बक रहा था। इंसान की औलाद अपने दिन भर की खीझ को अपनी बीबी पर बरसा रहा था, शायद इससे उसकी आत्मा को शांति मिलती थी।

कमरे से किसी के कराहने की आवाज आ रही थी।

नन्दू ने पहुँचते ही पूछा—"अब्बास चाचा बात क्या है?"

"बेटा शहीदा अब न रहेगी। शायद वह कुछ दिन और ठहरती लेकिन इस बेवकूफ औरत ने आज उसे एक खुराक दवा भी नहीं पिलायी।"

"कहाँ से पिलाती"...औरत ने दबी जबान से कहा।— "पैसे"........ इतना कहते-कहते उस स्त्री का गला रुँध गया।

विकराल समंदर का प्रवाह बहते बहते रुका। केवल अश्रु की अविरल धारा बह निकली, जिसमें एक मात्र सिसक थी।

राजिव अब अधिक सुनने को तैयार नहीं था। डाक्टर बुलाने चला। नन्दू लड़की के माथे पर हल्के हाथों से मालिश कर रहा था।

गरीब नन्दू के पास शहीदा की कुछ ही मधुर स्मृतियाँ थीं। एक दिन भोली शहीदा ने उसे कहा था—"अब क्या मैं एक बच्ची हूँ जो लेमनचूस की मिठाइयां खिलाकर ठगना काहते हो।" नन्दू ने उस क्षण उसे गले से लगा लिया था। पतली दुबली शहीदा! स्वाभाविक स्नेह और निश्छल वार्तालाप ही तो उसका भूषण और सौन्दर्य था। इससे अधिक गरीब को होता भी क्या है। वह तो प्यार का दो कतरा दे सकता, दुआएँ और शुक्रिया दे सकता है, इससे अधिक जिन्दगी ही तो।

शहीदा बार बार होश में आकर बेहोश हो जाती, शरीर ठंडा पड़ गया था, सिर गर्म और आँखें लाल। न जाने क्यों उसने बेहोशी की अवस्था में ही नन्दू के हाथों को अपने सीने की ओर खींच लिया, और नन्दू, हतप्रभ सा उसके गालों पर झुक गया। उदास चेहरा, बड़ा-बड़ा लम्बा केश शहीदा के मुँह पर छा गया, मानों काले बादल आसमान में छा गये हों। नन्दू और अधिक झुक गया शायद वह जिन्दगी की सुराख में घुसकर देखना चाहता था कि शहीदा कितनी दूर फिसल चुकी है; उसका

मिलन अब कितना कठिन है। चिकने साँप की तरह उसकी जिन्दगी फिसलती जा रही थी !

इंसान की बेटी इंसान की आत्मा को तड़पती छोड़ चली गई क्योंकि उसके अरमान पूरे न हुए। जवान बेटी को इंसान लाल चुदंरी पहना कर विदा न कर सका; बल्कि दो गज पुराने सफेद कफन से उसका शरीर ढंक कर; घर से बाहर; दुनियां से दूर फेंक दिया—गाड़ दिया।

नन्दू लौटकर अपनी गली आया। राजिव कब्रगाह से ही नौकरी पर चला गया। आज सुबह साढ़े छः बजे ही वह ड्युटी पर नहीं पहुंच सका। चार घंटे की देर हो गई उसे।

राजिव रात भर का जगा था। उसकी आँखें लाल थीं। दिल भारी था। न जाने क्या-क्या आज वह सोचने लग गया था। दूकान में घुसकर वह झटपट काम में लग गया। उसकी आँखें अपना अपराध स्वीकार कर रही थीं। इतने में सेठ गरज उठा—"इतनी देर कहां की ?"

राजिव मौन ! जवाब दे भी तो क्या, फिर उसके जवाब को............। वह मौन ही रहा।

सेठ की चमकीली आँखें उसके चेहरे के रंग से मिल कर एक बार फिर राजिव को घूरने लगीं—"राजिव, मैं पूछता हूं चार घंटे की देर क्यों हुई ?"

"जी" राजिव की आवाज थरथरा गई "एक पड़ोसी की बेटी मर गयी थी, इसलिये आने में देर हुई।"

"लेकिन तुम तो नहीं मर गये थे, तुम्हें क्यों देर हुई।

महीने में १० दिन यही सब बहाना लगाकर नमकहरामी करता है। आज से तुम्हें छुट्टी है। मैं इतना नहीं बर्दाश्त कर सकता पैसे दूँगा तो हजार नौकर हैं, कोई मुफ्त में थोड़े ही काम करता है।"

राजिव का हृदय हाहाकार कर उठा।

उसकी आँखें आँसू की धारा भी बहाना नहीं चाहती थीं। केवल दो फटी आँखों से वह सेठ की ओर देख रहा था जिसमें शायद प्रतिवाद करने का साहस नहीं।

वह चुप चाप बाहर चला गया। एक ऐसा बवन्डर उसके मस्तिष्कमें उठने लग गया जिसमें उनचासो पवनका समावेश था।

उसने चाहा कि सेठ से क्षमा-भीख मांग लूँ। लेकिन क्रूरता और मनुष्यता के भयंकर रूप को देखकर वह कुछ न कर सका।

राजिव दिन भर होटल के छोटे-से कमरे में बैठकर आने जाने वालों को देखता रहा। इन्हीं आने जाने वालों की तरह उसके विचार भी मस्तिष्क में आते और चले जाते थे। आकाश अन्धकार से भरा था और जमीन दलदल पानी और जंगलों से। चलना किसी भी जगह आसान नहीं था। लेकिन पैर तो बढ़ाना ही पड़ेगा।

राजिव के कुल नौ रुपये सेठ के पास बांकी थे। वह उन्हें लेने आया था। सेठ ने दूसरे दिन आने को कह कर उसे भगाना चाहा। लेकिन आज राजिव सेठ का नौकर नहीं था और न आज सेठ के किसी हुक्म का डर रखना चाहता था।

। भी गिड़गिड़ा कर उत्तर दिया—"मुझे आज रुपये चाहिए। ाज-रोज आपके यहां रुपये मांगने नहीं आ सकता, दूसरी री भी तो खोजनी है। अगर आप रुपये नहीं दे सकते मुझे काम देना होगा।"

सेठ गुस्से से काँप उठा। "तो क्या……!"

"हाँ, मैं आज तुम्हें नहीं छोड़ सकता। रुपये दो या नहीं नौकरी दो। मैं भूखों नही मर सकता। मेरी बीबी ार है मां मर रही है उन सबों की सेवा के लिये मुझे रुपये हिये। अगर तुम दोनों में से कुछ न दोगे तो समझो ··।"

आज राजिव का स्वर आज्ञा के बंधन को लांघता जा रहा । वह यह नहीं समझ पा रहा था कि उसके मुँह से ऐसे ब्द निकल कैसे रहे हैं ?

सेठ ने मुँह टेढ़ा कर लिया। उसके चेहरे पर नकारात्मक ाव थे—"अभी न रुपये दूँगा, न नौकरी। जो करना हो ार लो।"

राजिव एक क्षण रुका। उसकी वाणी अधिक कर्कश होकर नेकल पड़ी—"तो मैं तुम्हें छुरे मार दूँगा।··· छुरे मार दूँगा !"

सेठ चिल्लाया—"पागल पागल !"

दूकान के अन्य कर्मचारियों ने राजिव को पकड़ लिया और वह हिरासत की हवा खाने चला गया।

× × ×

नन्दू को देखते ही राजिव की आँखें छलछला गईं—"नन्दू मुझसे मिलने क्यों आये। शायद मुझे जमानत पर छुड़ाने।

लेकिन शहर में तुम्हें कौन जानता है, और मैं छूट कर भी क्या करूंगा। बाहर की दुनियां के जुल्म और अन्याय से पागल खाने की दुनियाँ ही अच्छी है, जहां विकल आत्माओं के दर्शन तो होते हैं, उनकी आत्मा को देखकर शान्ति तो मिलती है। वहां तो बस एक साम्राज्य है—पागलों का साम्राज्य! वहाँ सेठ और नौकर नहीं, गरीब और अमीर नहीं—सभी पागल हैं। उनके लिए एक नाम है, एक दुनियाँ है। वहाँ भेद-भाव नहीं।"

नन्दू रुन्धे कंठ से बोला—"शहर में मेरा है भी कौन? गरीबों का मित्र होता भी कौन है? उसके जीवन में कुछ रहता तो नहीं, इसलिए ..स्वार्थ के वशीभूत होकर भी कोई उससे मित्रता करना नहीं चाहता। गरीबों का मित्र अक्सर गरीब हुआ करता है क्योंकि दोनों का जीवन एक ऐसे मिलन बिन्दु पर आकर मिलता है जहां न किसी की लघुता पहचानी जा सकती है और न श्रेष्ठता, इसलिए कि दोनों गरीब हैं। दोनों पर पूञ्जीवादी ऐटम का विस्फोट होता है। दोनों शोषण की चक्की में समान रूप से पीसे जाते हैं। दमन की चक्की में पिस कर उनकी आत्मा से निकली हुई कराह, चीख-पुकार, सभी वायुमंडल में मिलकर एक हो जाती है उस वायुमंडल में किसी की आवाज अलग-अलग पहचानी नहीं जा सकती, तुमने जो कुछ भी किया, बहुत जल्दीबाजी में किया, राजिव! कमसे कम मुझे पूछ तो लिया होता! हम अपने गरीब साथियों के साथ इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाते।

लेकिन.... ." नन्दू गमगीन होता गया। एकाएक उसकी आवाज फिर चढ़ गई—"हम अभी अभी युनियन में इसकी खबर करते हैं। लेकिन याद रहे मेरे दोस्त अभी कोई कदम न उठाना, देखो क्या होता है।"

नन्दू भागा। राजिव गरज उठा—"नन्दू यह सब कुछ न करो मैं......" नन्दू इन शब्दों को सुनकर पुनः लौटा।

अब सिपाही ने उनके गप के सिलसिले में दखल देते हुए कहा—"समय हो गया।"

राजिव के दोनों हाथ लोहे के बड़े बड़े सीखचों से निकल कर बाहर आये। नन्दू उन हाथों से लिपट गया। लेकिन उसका हृदय उस हृदय से न मिल सका जिसमें करुणा का असीम सागर बहता था, क्योंकि दो हृदयों के बीच मोटे मोटे सीखचों की मजबूत दीवार खड़ी थी।

नन्दू कुछ बोल न सका। उसका गला रुँध गया। वह विस्मित होकर राजिव को देख रहा था। राजिव एक बार फिर बोला—"आज डाक्टरी जांच के बाद मुझे कांके भेज दिया जायगा, नन्दू! तुम सबों को देखना।"

नन्दू रण में हारे हुए सिपाही की तरह लौट गया। उसके मस्तिष्क में विचारों का बादल उमड़ रहा था—

"चाँदी के जूतों की मार बड़ी बुरी होती है। शायद कोई ईमानदार का बच्चा हो जो इस मार से इस पूँजीवादी युग में बच सके। यही मार तो आजके जीवन की सबसे बड़ी 'ट्रेजडी' है। इसकी खुमारी में डूबकर ही तो आज मनुष्य

सब कुछ खो बैठता है और खुमारी इस मार की बेहोशी ही तो है। इसी मार की बेहोशी की अवस्था में डाक्टर ने राजिव को पागल का सर्टिफिकेट दे दिया।" राजिव पागल हो गया। वह सचमुच पागल हो गया। उसकी आंखों के सामने अब कांके के असंख्य पागल थे और उस बीच में खड़ा वह गरीब राजिव था। उसकी स्थिति भी आज उन पागलों की तरह थी।

राजिव को रात भर नींद नहीं आई। वह सोचता जा रहा था—"पाषाण पर अब सिर पटक कर क्या होगा। अब तो जीवन को एक ऐसी दिशा में मोड़ना है जहाँ पागलखाने की यातनाएँ भोगने का अवसर न मिले। अवसर भी मैं क्यों दूँ, मैं पागल तो नहीं, मैं अन्य लोगों सा तो नहीं; जो यातनाएँ सहते रहते हैं। पूंजीवाला अपनी पूंजी के रक्षार्थ गरीबों के बहते हुए तूफान को रोककर उन्हें पागल करार देते हैं, कांके भेज देते हैं, जहां सड़-सड़कर उनकी जिन्दगी खत्म हो जाती है।"

राजिव उस क्षण भी न जाने क्या-क्या सोच गया—आजादी का जमाना और उसकी बेबसी। काश, आज स्वयं वह आजाद रहता। वह तो आजाद देश में भी आजाद नहीं, वरना एक सेठ की क्या मजाल थी कि वह उसे कांके भेजने की हिम्मत करे।

दूसरे दिन, हाथ से हथकड़ियां खोल दी गई थीं। डाक्टर के एक छोटे से कमरे में एक छोटी कुर्सी पर वह कुछ सिपाहियों से घिरा बैठा था।

डाक्टरी जांच के बाद उसने सिगरेट के जले अंश को फंकने की मुहलत मांगी। दुमंजिले की खिड़की से जमीन बहुत दूर नजर आ रही थी—पास ही एसेम्बली भवन पर लहराता हुआ तिरंगा झंडा दिखलाई पड़ रहा था, एसेम्बली भवन के आगे कतार में कितनी ही लाल-पीली गाड़ियां खड़ी थीं। जिसमें से सफेद पोशों की मुस्कुराती बारात निकल कर रेस्ट्रां की ओर जा रही थी। दिलजलों की आह का इन्हें कहां पता। वे जा रहे हों शायद आज परमिट की अधिक मांगें आने वाली हैं, वे हँस रहे हैं शायद आज उन्होंने मजदूर नेता को गिरफ्तार कराया है, वे गा रहे हैं शायद शहर में कहीं नृत्य संगीत का उल्लासमय आयोजन किया गया है। उन्हें देख राजिव मन-ही मन बुदबुदाया—

"ये सफेद पोश ही तो आज राष्ट्र के कर्ण धार है क्योंकि आज की हुकूमत उन्हें विराशत में अपने अंग्रेज दोस्तों से मिली है जो उनसे जुल्म अत्याचार में कुछ भी कम नहीं! मेरी आवाज इस सरकार तक भी नहीं पहुँच सकती है लेकिन ये अपने को जनता के प्रतिनिधि मानते हैं; न्यायकर्त्ता मानते हैं। अंग्रेजों की नंगी तलवारें उनकी पुलिस और फौजें, बंदूक और मशीन गनें इनकी रक्षा के लिए सर्वदा तैयार रहती हैं।"

राजिव अब जी कर भी क्या करेगा। नन्दू न तो पैसे खर्च कर उसके मुकदमे का फैसला ही करा सकता है और न किसी भारी चाँदी के जूतों से डाक्टर अथवा पुलिस को मार ही सकता है जिससे तिलमिलाकर वे साफ साफ कह दें कि उसने सोचने

में गलती की, समझने में गलती की, राजिव निर्दोष है पागल नहीं।

राजिव ने इधर-उधर देखा। डाक्टर कुछ गुनगुना रहा था। पुलिस दारोगा अखबारों में उलझा था। दो एक सिपाही अन्य-मनस्क से खड़े थे।

राजिव कूद पड़ा, हवा में दो एक बार उलट पुलट कर जमीन पर सदा के लिए सो गया।

२६ जनवरी की रात

"एक आना और बाबू !"--रिक्शावाले ने ठिठुरते हुए लड़खड़ाती जबान में कहा।

"जितना होना चाहिए उतना तो दे चुका बे, अब क्या चाहिए? घर उठा कर दे दूँ।"—युवक ने कमरे में घुसते हुए कहा।

"नहीं बाबू, घर देने की तो बात मैं नहीं कहता, बस एक आना और............।"—रिक्शावाला ने भिखारी सी मुखाकृति बनाते हुए पुनः कहा।

"अबे जाता है यहां से, या बकबक करेगा!"—युवक ने नशे में चूर, डपट कर कहा।

"जरा सोचिए बाबू, एक बजने को चला! जाड़े की रात है! अपनी वाजिब मजूरी एक आना मांगता हूँ तो आप नाराज हो रहे हैं।"—रिक्शावाला गंभीर मुद्रा में बोला।

"अबे दूसरों को सिखला ! सारी दुनियां जानती है—कांग्रेस आफिस से यहां आने का तीन आना पैसा मिलता है, मैं इससे ज्यादा दे नहीं सकता।"

"लेकिन बाबू, आप ये अन्याय कर रहे हैं। गरीबों का खून कर रहे हैं। आज भी तो मेरी पूरी मजूरी दे दीजिये, आज २६ जनवरी है। आज सभी दफ्तर बन्द रहे, और मैंने आपको कंधे पर लादकर इस जाड़े में यहाँ पहुंचाया। लेकिन आप मेरी वाजिब मजूरी देने में भी घबड़ाते हैं।" रिक्शावाले ने धीरे से दुखी होते हुए कहा।

"२६ जनवरी है तो क्या हुआ—साले आजादी इनके लिये हुई है, पैसा हराम में आता है।" युवक की त्योरियां चढ़ गईं, उसने धीरे से जूता खोला और रिक्शावाले के गालों पर जड़ कर चलता बना।

रिक्शावाला युवक को एकटक देखता रह गया। उसकी डबडबाती आँखें मानों यह कह रही थीं—"आज मैं निस्सहाय गरीब हूं, मुझे मार लो। लेकिन कुछ दिनों बाद मुझे नहीं मार सकोगे जालिम समय आ रहा है।"